दुनिया के मज़दूरो, एक हो !

जोसेफ़ स्तालिन

मार्क्सवाद और जातियों का प्रश्न*

★

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड

द्वितीय संशोधित संस्करण : अप्रैल १९५४

प्रकाशकीय नोट

प्रस्तुत अनुवाद एकदम नये सिरे से, फॉरेन लैंग्वेजेज़ पब्लिशिंग हाउस, मॉस्को से प्रकाशित जोसेफ़ स्तालिन की इसी शीर्षक की पुस्तक के सन् १९५० के अँग्रेज़ी संस्करण से किया गया है।

अनुवादक : ओम प्रकाश संगल

मूल्य : बारह आना

जयन्त भट्ट द्वारा पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड, १९०–बी-खेतवाडी मेन रोड, बम्बई–४ की ओर से प्रकाशित और नवीन प्रेस, फैज़ बाज़ार, दिल्ली में मुद्रित।

विषय-सूची



जोसिफ़ विस्सारियोनोविच स्तालिन

रूस में प्रतिक्रान्ति के काल के साथ-साथ केवल "गर्जन और विद्युत" ही नहीं आई, आन्दोलन में अविश्वास और संयुक्त शक्ति में निष्ठा की कमी भी पैदा हुई। जब तक "उज्ज्वल भविष्य" में लोगों का विश्वास क़ायम रहा तब तक वे जाति-भेद भुलाकर, कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ते रहे। और, तब तक सभी जातियों के लोगों के समान प्रश्न ही सबसे ऊपर रहे! परन्तु, जब सन्देह और अविश्वास ने लोगों के हृदय में घर कर लिया तब वे अलग-अलग होने लगे; हर आदमी अपनी-अपनी जाति के खेमे में जाने लगा: अब हर एक को सिर्फ़ अपने पर ही भरोसा करने दो! "जातियों का प्रश्न" सबसे ऊपर आ गया!

इसी के साथ-साथ, देश के आर्थिक जीवन में एक गहरी उथल-पुथल भी हो रही थी। १६०५ का वर्ष व्यर्थ नहीं गया था: देहाती जिलों में अर्द्ध-दास प्रथा के अवशेषों पर एक और प्रहार हो चुका था। अकाल के वर्षों के बाद लगातार कई सालों तक जो अच्छी फ़सलें हुई थीं और उनके बाद उद्योग-धन्धों में जो बढ़ती हुई थी, उससे पूँजीवाद की प्रगति में बड़ी मदद मिली थी। देहाती जिलों में वर्ग-भेदों का बढ़ना, शहरों की तरक़्क़ी, व्यापार की उन्नति और यातायात तथा सूचना के साधनों का विकास—इन सभी बातों में बड़ी तेजी आ गई थी। सीमा के पास वाले प्रदेशों में यह तेजी ख़ास तौर पर देखी जा सकती थी। और, इसका यह लाज़िमी नतीजा था कि रूस में रहने वाली विभिन्न जातियों के आर्थिक सुदृढ़ीकरण की प्रक्रिया तेज हो गई थी। उनमें हलचल पैदा होना ज़रूरी था।...

इस वक्त तक देश में "वैधानिक शासन" स्थापित हो चुका था और

वह भी जातियों में हलचल पैदा करने का ही काम कर रहा था। समाचार पत्र उन्नति कर रहे थे और साहित्य, आम तौर पर देश में फैल रहा था। अखबारों, छापेखानों और सांस्कृतिक संस्थाओं को किसी कदर आजादी मिल गई थी। जातीय नाट्यशालाओं (थियेटरों) की संख्या में वृद्धि हो गई थी। इनके अलावा, और भी अनेक ऐसी बातें हुई थीं जिनसे निस्सन्देह रूप से "जातीय भावनाएँ" पुष्ट हुई थीं। दूमा के चुनाव के सिलसिले में जो धुआँधार प्रचार हुआ और उसमें भाग लेने के लिए जो राजनीतिक दल बने, उनसे विभिन्न जातियों को और भी जोरों से सक्रिय बनने का अवसर मिला और उनको गोलबन्दी करने के लिए एक नया और बड़ा विस्तृत क्षेत्र प्राप्त हो गया।

एक ओर, इस प्रकार, लड़ाकू जातीयता की लहर ऊपर उठ रही थी और "शासक वर्ग" सीमा वाले प्रदेशों को उनके "स्वातन्त्र्य-प्रेम" की सज़ा देने के लिए दमन-चक्र चला रहा था। दूसरी ओर, इसके जवाब में नीचे से भी जातीयता की लहर उठ रही थी, जो कभी-कभी अंधराष्ट्रवादिता का रूप धारण कर लेती थी। सभी जानते हैं कि इस काल में यहूदियों में ज़ायनवाद* फैल रहा था, पोलैण्ड में अंधराष्ट्रवाद जोर पकड़ रहा था। तातारों में सर्व-इस्लामवाद ने जड़ें जमा ली थीं। आर्मीनियनों, जार्जियनों और युक्राइननों में जातीयता की भावना बलवती हो रही थी और साधारण आदमी हर जगह यहूदी-विरोधी भावना का शिकार हो रहा था।

जातीयता की लहर ऐसे वेग से बढ़ रही थी कि लगता था जैसे समस्त श्रमजीवी जनता उसकी लपेट में आ जायगी। और जैसे-जैसे स्वतन्त्रता का आन्दोलन धीमा पड़ता जाता था, वैसे-वैसे जातीयता का विष-वृक्ष फलता-फूलता जाता था।

इस संकटपूर्ण समय में सामाजिक-जनवाद के कन्धों पर एक बड़े महान् कार्य की जिम्मेदारी आ पड़ी थी। वह काम था—जातीयता को फैलने से रोकना और आम जनता को इस "महामारी" के चंगुल में पड़ने से बचाना। और, यह काम केवल सामाजिक-जनवाद ही कर सकता था क्योंकि

सिर्फ़ उसी के पास वह परखा हुआ अस्त्र था जिससे जातीयता को रोकना सम्भव था। वह है—अन्तरराष्ट्रीयता का अस्त्र, वर्ग-संघर्ष की एकता और अविच्छिन्नता का अस्त्र। और इसलिए, जातीयता की लहर जितनी ही तेज़ी से बढ़ रही थी उतने हो जोर-शोर के साथ सामाजिक-जनवाद को भी मैदान में आना था और रूस में रहने वाली सभी जातियों के मेहनत-कशों के भाईचारे और एकता का नारा बुलन्द करना था। और, इस मामले में सबसे अधिक दृढ़ता उन सामाजिक-जनवादियों को दिखानी थी जो सीमा वाले प्रदेशों में रहते थे और इसलिए जिनका जातीय आन्दोलन से सीधा सम्पर्क होता था।

परन्तु, सभी सामाजिक-जनवादी इस कसौटी पर खरे नहीं उतरे। विशेष रूप से, यह बात सीमावाले प्रदेशों के सामाजिक-जनवादियों पर लागू होती है। बुन्द*, जो पहले मजदूर-आन्दोलन के समान उद्देश्यों पर जोर दिया करती थी, अब अपने विशिष्ट, शुद्ध जातीय उद्देश्यों पर जोर देने लगी। यहाँ तक कि उसने "इतवार की पवित्र छुट्टी (सैबेथ)" मनाने की घोषणा कर दी और "यिद्दिश भाषा को सरकार से मनवाने" की मांग पर चुनाव लड़ा।[1] बुन्द का अनुसरण किया काकेशस ने। पहले काकेशस के सभी सामाजिक-जनवादी "जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त शासन" की मांग का विरोध करते थे। अब उनमे से अनेक कह रहे हैं कि यह मांग तुरन्त पूरी होनी चाहिए।[2] और, हम यहाँ विसर्जनवादियों** के सम्मेलन का जिक्र नहीं करेंगे, जिसने कि बड़ी कूटनीतिक भाषा में जातिवादी भटकावों की इजाजत दे दी है।[3]

परन्तु, इससे यह बात तो बिलकुल साफ़ हो जाती है कि जातियों के प्रश्न पर रूसी सामाजिक-जनवाद का दृष्टिकोण अभी सभी सामाजिक-जनवादियों के सामने स्पष्ट नहीं है।

---

१. देखिये "बुन्द के नवें सम्मेलन की रिपोर्ट।"
२. देखिये "अगस्त-सम्मेलन की घोषणा।"
३. उपर्युक्त।

अतएव, आवश्यक है कि जातियों के प्रश्न का गम्भीर और विशद् रूप से विवेचन किया जाय। पक्के सामाजिक-जनवादियों का कर्तव्य है कि जातिवादी भटकाव का—वह चाहे जिस दिशा से आवे—जमकर और दृढ़ता के साथ मुक़ाबिला करें।

१

जाति

जाति क्या है ?

जाति मूलतः एक जन-समुदाय है; एक विशिष्ट जन-समुदाय को जाति कहते हैं।

यह समुदाय एक नस्ल पर आधारित नहीं होता, न उसकी बुनियाद एक क़बीले पर ही रखी होती है। आधुनिक इटालियन जाति रोमनों, ट्यूटनों, एत्रूस्कनों, यूनानियों, अरबों आदि से मिलकर बनी थी। फ्रान्सीसी जाति गॉल्स, रोमनों, ब्राइटनों और ट्यूटनों आदि से मिलकर बनी थी। अंग्रेज़, जर्मन और अन्य जातियों के बारे में भी यही बात सच है। ये जातियाँ भी विभिन्न नस्लों और क़बीलों के लोगों से मिलकर बनी हैं।

अतएव, जाति एक ऐसा जन-समुदाय नहीं है जो किसी नस्ल या क़बीले पर आधारित हो, बल्कि वह एक ऐसा जन-समुदाय है जिसका निर्माण इतिहास ने किया है।

परन्तु, साथ ही, इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि साइरस और सिकन्दर के महान् साम्राज्यों का निर्माण यद्यपि इतिहास के द्वारा हुआ था और वे भी विभिन्न क़बीलों और नस्लों से मिलकर बने थे, पर उन्हें किसी भी हालत में जातियाँ नहीं माना जा सकता था। वे साम्राज्य जातियाँ नहीं थे, बल्कि विभिन्न प्रकार के जन-समूहों का जमाव थे, जो आकस्मिक रूप से एक-दूसरे से आ मिले थे, जिनके सम्बन्ध दृढ़ नहीं हुए थे और जिनका एक-साथ मिल जाना या टूटकर अलग-अलग हो जाना किसी विजेता की विजय या पराजय पर ही निर्भर रहता था।

अतएव, लोगों के आकस्मिक अथवा अस्थायी जमाव को जाति नहीं कह सकते। जाति एक स्थायी जन-समुदाय को कहते हैं।

परन्तु, प्रत्येक स्थायी जन-समुदाय को भी जाति नहीं कहा जा सकता। आस्ट्रिया और रूस बड़े स्थायी समुदाय हैं, पर कोई भी उन्हें जातियाँ नहीं मानता। जातीय समुदाय और राजनीतिक समुदाय, अथवा राज्य, में क्या अन्तर है? दूसरे अन्तरों के साथ, एक यह भी है कि बिना एक समान भाषा के किसी जातीय समुदाय की कल्पना भी नहीं की जा सकती, जब कि किसी राज्य के लिए यह जरूरी नहीं है कि उसकी एक समान भाषा हो। आस्ट्रिया में रहने वाली चेक जाति या रूस में रहने वाली पोल जाति की हम कल्पना भी नहीं कर सकते थे यदि इन दोनों जातियों की अपनी अलग-अलग भाषाएँ न होतीं। दूसरी ओर, इस बात से रूस और आस्ट्रिया के स्थायित्व में कोई अन्तर नहीं पड़ता कि दोनों देशों में अनेक भाषाएँ पाई जाती हैं। यहाँ, जाहिर है, हमारा मतलब लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं से है, न कि सरकारी भाषा से।

अतएव, एक *समान भाषा* का होना जाति की एक आवश्यक विशेषता है।

इसका, जाहिर है, यह मतलब नहीं कि विभिन्न जातियाँ सदा और प्रत्येक स्थान में विभिन्न भाषाएँ ही बोलती हैं। इसका यह मतलब भी नहीं कि एक भाषा बोलने वाले सभी लोग आवश्यक रूप से एक ही जाति के होते हैं। प्रत्येक जाति की एक *समान* भाषा का होना आवश्यक है, परन्तु विभिन्न जातियों की विभिन्न भाषाओं का होना आवश्यक नहीं है! ऐसी कोई जाति नहीं मिलेगी जो एक ही समय में कई भाषाएँ बोलती हो, परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि एक भाषा बोलने वाली दो जातियाँ नहीं हो सकतीं! अंग्रेज और अमरीकी दोनों एक भाषा बोलते हैं, परन्तु उन्हें एक जाति नहीं माना जा सकता। नारवे वासियों तथा डेनमार्क वासियों और अंग्रेजों तथा आयरलैण्ड वासियों के बारे में भी यही बात सच है।

परन्तु, इसका क्या कारण है कि एक समान भाषा होते हुए भी अंग्रेजों और अमरीकियों की एक ही जाति नहीं है ?

इसका पहला कारण यह है कि ये जातियाँ साथ नहीं रहतीं, बल्कि भिन्न क्षेत्रों में रहती हैं। जाति बनने के लिए आवश्यक है कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी साथ रहते चले आने के परिणामस्वरूप लोगों के बीच एक लम्बे काल तक नियमित सम्पर्क और आदान-प्रदान होता रहा हो। परन्तु, बिना एक समान क्षेत्र के लोग लम्बे काल तक साथ-साथ कैसे रहेंगे? पहले अंग्रेज और अमरीकी एक ही इलाके में, यानी इंग्लैण्ड में, रहा करते थे। उस वक्त उनकी एक जाति थी। बाद में, अंग्रेजों का एक हिस्सा इंग्लैण्ड छोड़कर एक नये इलाके में—अमरीका में—चला आया और वहाँ, इस नये क्षेत्र में कुछ समय तक रहने के बाद, वह एक नयी अमरीकी जाति बन गया। निवास-क्षेत्र के अलग-अलग हो जाने के कारण दो भिन्न जातियाँ बन गयीं।

अतएव, एक *समान क्षेत्र* का होना जाति की एक आवश्यक विशेषता है।

परन्तु, बात इतनी ही नहीं है। समान क्षेत्र से अपने-आप जाति नहीं पैदा हो जाती। इसके अलावा, एक ऐसे अन्दरूनी आर्थिक सम्बन्ध की भी आवश्यकता होती है जो जाति के विभिन्न भागों को जोड़कर एक इकाई में ढाल दे। इंग्लैण्ड और अमरीका के बीच ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं है और इसलिए उनकी दो अलग-अलग जातियाँ हैं। परन्तु, स्वयं अमरीकियों को भी एक जाति कहलाने का अधिकार न मिलता यदि उनके आपस के श्रम-विभाजन के परिणामस्वरूप और यातायात आदि के साधनों के विकास आदि के कारण अमरीका के विभिन्न भाग आपस में बंधकर एक आर्थिक इकाई न बन जाते।

उदाहरण के लिए, जार्जियन जाति को लीजिए। अर्द्ध-दास प्रथा के सुधार (१८६३-६७) के पहले जार्जियन लोग एक समान क्षेत्र में रहते थे और एक सी भाषा बोलते थे। फिर भी, वैज्ञानिक दृष्टि से, उस वक्त उनको

एक जाति नहीं माना जा सकता था, क्योंकि तब वे कई ऐसे राज्यों में बँटे हुए थे जिनका आपस में कोई सम्बन्ध न था और इस कारण उनका कोई समान आर्थिक जीवन नहीं था। सदियों से, वे आपस में लड़ते और लूट-मार मचाते आये थे और इसके लिए एक-दूसरे के खिलाफ़ कभी ईरानियों और कभी तुर्कों की मदद लेते रहते थे। कभी-कभी कोई सफल राजा कई राज्यों को एक में मिला लेता था, पर उससे भी अधिक से अधिक एक ऊपरी आकस्मिक और अस्थायी जमाव ही तैयार हो पाता था, जो केवल शासन के क्षेत्र तक सीमित रहता था और राजाओं की स्वेच्छाचारिता तथा किसानों की उदासीनता के कारण बहुत जल्द छिन्न-भिन्न हो जाता था। आर्थिक रूप से अलग-अलग टुकड़ों में बँटे हुए जार्जिया में और कुछ हो भी नहीं सकता था।......एक जाति के रूप में जार्जिया केवल उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में सामने आया जब कि अर्ध-दास-प्रथा खतम हो गई, देश का आर्थिक जीवन उन्नत हुआ, यातायात और सूचना के साधनों ने तरक्क़ी की, पूँजीवाद का उदय हुआ, और इन सब बातों के परिणाम-स्वरूप जार्जिया के विभिन्न जिलों के बीच श्रम-विभाजन क़ायम हो गया, अलग-अलग राज्यों का आर्थिक अलगाव पूरी तरह दूर हो गया और वे एक इकाई में बंध गये।

अन्य ऐसी जातियों के बारे में भी यही कहा जा सकता है, जो सामन्तवाद की अवस्था से गुजर चुकी हैं और जिनमें पूँजीवाद का विकास हो चुका है।

अतएव, *एक समान आर्थिक जीवन* और *आर्थिक सम्बद्धता* जाति की आवश्यक विशेषता है।

परन्तु, इतना भी काफ़ी नहीं है। ऊपर लिखी बातों के अलावा, जाति विशेष के लोगों के विशिष्ट मानसिक गठन पर भी विचार करना आवश्यक है। विभिन्न जातियों में केवल उनके जीवन की परिस्थितियों को लेकर ही भेद नहीं होता, उनके मानसिक गठन में भी भेद होता है जो जातीय संस्कृति की विशेषताओं के रूप में प्रकट होता है। यदि इंग्लैण्ड,

अमरीका और आयरलैण्ड, एक भाषा बोलते हुए भी तीन अलग-अलग राष्ट्र अथवा जातियाँ माने जाते हैं तो इसका एक बड़ा कारण यह है कि उनका मानसिक गठन अलग-अलग प्रकार का है, जो जीवन की भिन्न परिस्थितियों के कारण कई पीढ़ियों में बना है।

स्पष्ट है कि यदि मानसिक गठन, अथवा जैसा कि कभी-कभी कहा जाता है, "जातीय स्वभाव" को अलग से लिया जाय तो वह एक हवाई सी चीज लगती है जिसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। परन्तु, जिस हद तक वह पूरी जाति की एक समान विशिष्ट संस्कृति के रूप में प्रकट होती है, उस हद तक उसकी व्याख्या अवश्य की जा सकती है और उसे अनदेखा नहीं किया जा सकता।

कहने की आवश्यकता नहीं कि "जातीय स्वभाव" कोई शाश्वत वस्तु नहीं है, जो कभी न बदलती हो। जीवन की परिस्थितियों में जो परिवर्तन होते हैं उनसे "जातीय स्वभाव" भी बदलता है। परन्तु, हर समय चूंकि उसका एक विशिष्ट रूप होता है इसलिए जाति के स्वरूप पर उसकी छाप पड़े बिना नहीं रहती।

अतएव, *एक समान मानसिक गठन*, जो एक समान संस्कृति के रूप में प्रकट होता है, जाति की एक आवश्यक विशेषता है।

हम जाति की सभी आवश्यक विशेषताएँ गिना चुके हैं।

जाति एक ऐसा स्थायी जन-समुदाय है जिसका इतिहास के द्वारा निर्माण हुआ है, और जो एक समान भाषा, समान क्षेत्र, समान आर्थिक जीवन तथा एक समान संस्कृति के रूप में प्रकट होने वाले समान मानसिक गठन के आधार पर बना है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि अन्य ऐतिहासिक घटनाओं की भाँति जाति भी परिवर्तन के नियमों के आधीन है; जाति का भी एक इतिहास है; उसका भी आदि और अन्त है।

यहाँ इस बात पर जोर देना आवश्यक है कि ऊपर लिखी विशेषताओं में से किसी एक ही का अकेली पाए जाना जाति कहाने के लिए काफ़ी नहीं

है। दूसरी ओर, यदि इनमें से एक भी विशेषता न हो तो वह जन-समुदाय जाति नहीं रहता।

यह कल्पना की जा सकती है कि किसी जन-समुदाय का एक समान "जातीय स्वभाव" हो, परन्तु वह आर्थिक दृष्टि से एक कड़ी में न बँधा हो, उसके सदस्य अलग-अलग क्षेत्रों में रहते हों, भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलते हों, इत्यादि। ऐसी हालत में उस जन-समुदाय को जाति नहीं माना जा सकता। उदाहरण के लिए, रूस में रहने वाले, गैलीशिया में रहने वाले, अमरीका-वासी, जार्जियावासी और काकेशसवासी *यहूदी*—इन सब का एक ऐसा ही जन-समुदाय है जिसे हमारे मत में एक जाति नहीं माना जा सकता।

यह कल्पना भी की जा सकती है कि किसी जन-समुदाय का एक समान क्षेत्र और समान आर्थिक जीवन हो, पर वह एक भाषा न बोलता हो और न उसका कोई समान "जातीय स्वभाव" हो। ऐसे जन-समुदाय को भी जाति नहीं कहा जा सकता। इसके उदाहरण बाल्टिक प्रदेश में रहने वाले जर्मन और लैट लोग हैं।

अन्तिम उदाहरण नारवे वासियों और डेनमार्क वासियों का है जो भाषा तो एक बोलते हैं, पर दूसरी विशेषताओं के अभाव के कारण एक जाति नहीं माने जा सकते।

जब ये सारी विशेषताएँ मौजूद होती हैं, तभी जाकर कोई जाति बनती है।

कुछ लोगों का खयाल हो सकता है कि "जातीय स्वभाव" जाति की आवश्यक विशेषताओं में से मात्र एक नहीं है, बल्कि *एकमात्र* आवश्यक विशेषता है; और दूसरी विशेषताएँ आवश्यक विशेषताएँ न हो कर जाति के विकास में सहायता देने वाले *उपकरण* मात्र हैं। मिसाल के लिए, जातियों के प्रश्न पर आस्ट्रिया के सामाजिक-जनवादी सिद्धान्तवेत्ता आर. स्प्रिंगर, और विशेषकर, ओ. बेयर का यही मत था।

आइये, इन लोगों के मत पर थोड़ा विचार कर लें। स्प्रिंगर के अनुसार :

"जाति एक ढंग से सोचने और एक ढंग से बोलने वालों का समुदाय होना है।" वह "आधुनिक ढंग के ऐसे लोगों का सांस्कृतिक समुदाय है जो **अब 'धरती' से बंधे नहीं रह गए हैं**।"[1] (शब्दों पर जोर मेरा है—स्तालिन)

इस प्रकार, इन महाशय के मतानुसार, एक ढंग से सोचने और एक ढंग से बोलने वाले लोगों का "समुदाय" जाति होता है, उनमें एकता का कितना ही अभाव क्यों न हो, वे कहीं भी क्यों न रहते हों।

बेयर और भी आगे जाता है :

"जाति क्या है?" वह पूछता है। "क्या एक ही भाषा होने से कोई जन-समुदाय जाति बन जाता है? परन्तु अंग्रेज और आयरलैण्ड वासी······तो एक भाषा बोलते हुए भी एक जाति नहीं हैं; और यहूदियों की एक भाषा नहीं है, पर फिर भी वे एक जाति हैं।"[2]

तब बेयर साहब के मतानुसार जाति क्या है?

"जाति स्वभाव की अपेक्षाकृत समानता से बनती है।"[3]

पर यह स्वभाव, या जातीय स्वभाव क्या है? जातीय स्वभाव

"उन विशेषताओं का जोड़ है जो एक जाति के लोगों को दूसरी जाति के लोगों से जुदा करता है—वह उन शारीरिक एवं मानसिक गुणों का योग है जो एक जाति को दूसरी जाति से अलग करते हैं।"[4]

जाहिर है, बेयर यह भली भांति जानता है कि जातीय स्वभाव आकाश से नहीं टपकता और इसलिए वह आगे लिखता है :

"किसी जाति का स्वभाव और किसी भी बात से इतना अधिक निश्चित नहीं होता जितना उसके भाग्य से होता है······जाति एक समान भाग्य वाले जन-समुदाय के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।" और, यह भाग्य "उन परिस्थितियों से निर्धारित होता है जिन में रहकर लोग अपने जीवन के साधनों का उत्पादन करते हैं और अपने श्रम की उपज को आपस में बांटते हैं।"[5]

इस प्रकार, हम जाति की उस व्याख्या पर पहुँचते हैं जिसे स्वयं बेयर साहब ने "पूर्णतम व्याख्या" कहा है :

"जाति ऐसे लोगों का जोड़ है जिन्हें एक समान भाग्य ने स्वभाव की समानता में बांध दिया है।"[6]

---

१. आर. स्प्रिंगर : "जातियों की समस्या।" २. ओ. बेयर: "जातियों का प्रश्न और सामाजिक-जनवाद।" ३. उपर्युक्त। ४. उपर्युक्त। ५. उपर्युक्त। ६. उपर्युक्त।

इस प्रकार समान भाग्य पर आधारित एक समान जातीय स्वभाव तो यहाँ है, पर उसका समान क्षेत्र, समान भाषा या समान आर्थिक जीवन के साथ कोई सम्बन्ध आवश्यक नहीं है।

पर, तब जाति में बाक़ी क्या बचता है? जिन लोगों का आर्थिक जीवन एक नहीं है, जो अलग-अलग इलाक़ों में रहते हैं, और जो पीढ़ियों से भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलते आये हैं, वे किस प्रकार एक जाति के हो सकते हैं?

बेयर का कहना है कि यहूदियों की यद्यपि "कोई समान भाषा नहीं है," फिर भी वे एक जाति हैं।[1] परन्तु जार्जिया, दाग़िस्तान, रूस और अमरीका में रहने वाले यहूदियों में "समान भाग्य" और जातीय एकता कहाँ से आयेगी जब वे एक-दूसरे से बिलकुल कटे हुए हैं, अलग-अलग इलाक़ों में रहते हैं और भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलते हैं?

उपरोक्त देशों में रहने वाले यहूदी निस्सन्देह उसी ढंग का आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन बिताते हैं जिस ढंग का जार्जिया, दाग़िस्तान, रूस और अमरीका के दूसरे निवासी बिताते हैं और वे उन्हीं के जैसे सांस्कृतिक वातावरण में रहते हैं; और यह हो नहीं सकता कि इसकी उनके जातीय स्वभाव पर छाप न पड़े। इसके बाद उनके बीच यदि कोई समान वस्तु बचती है तो वह उनका धर्म है, उनका समान उद्गम है और एक विशिष्ट जातीय स्वभाव के कुछ अवशेष हैं। इन बातों के बारे में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। परन्तु, क्या कोई गम्भीरता के साथ यह तर्क कर सकता है कि चन्द धार्मिक रूढ़ियों और रीति-रिवाजों और विनाशोन्मुख मानसिक अवशेषों का इन यहूदियों के "भाग्य" पर अधिक प्रभाव पड़ता है और उन सजीव सामाजिक, आर्थिक, एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का कम प्रभाव पड़ता है जिनके बीच ये लोग रहते हैं? और, सिर्फ़ इसी मिथ्या धारणा के आधार पर यह कहना सम्भव है कि यहूदी एक जाति है।

तब बेयर की जाति और अध्यात्मवादियों की रहस्यमयी और अपने में सम्पूर्ण "राष्ट्रीय आत्मा" में क्या अन्तर रह जाता है?

---

१. उपर्युक्त

"जातियों की आवश्यक विशेषताओं" (जातीय स्वभाव) को उनके जीवन की "परिस्थितियों" से अलग करके, बेयर उनके बीच एक ऐसी दीवार खड़ी कर लेता है जिसे कभी पार नहीं किया जा सकता। परन्तु यदि जातीय स्वभाव जीवन की परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब नहीं है, यदि वह बाह्य वातावरण से लिये गए तमाम असरों का जोड़ नहीं है, तो और क्या है ? जातीय स्वभाव तक कोई इस सवाल को कैसे सीमित कर सकता है, और जातीय स्वभाव को उस मिट्टी से कैसे अलग किया जा सकता है जिससे उसका जन्म हुआ है ?

और, कोई यही बता दे कि अठारवीं सदी के अन्त और उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में, जब अमरीका न्यू इंग्लैंड के नाम से जाना जाता था, तब अंग्रेज़ जाति और अमरीकी जाति में क्या अन्तर था ? अन्तर, ज़ाहिर है, जातीय स्वभाव का नहीं था, क्योंकि अमरीकी लोग भी इंग्लैंड से ही आये थे और वहाँ से न केवल अंग्रेजी भाषा, बल्कि अंग्रेज़ों का जातीय स्वभाव भी अपने साथ लाये थे। और ज़ाहिर है, उसे वे इतनी जल्दी नहीं छोड़ सकते थे, यद्यपि नई परिस्थितियों के प्रभाव से वे स्वभावतः कुछ अपना विशिष्ट स्वभाव भी विकसित कर रहे थे। फिर भी, कमोबेश समान स्वभाव होने के बावजूद, अमरीकी लोग उस वक्त भी इंग्लैंडवासियों से अलग एक विशेष जाति बन गये थे ! ज़ाहिर है, एक जाति के रूप में न्यू इंग्लैंड का इंग्लैंड से यह भेद नहीं था कि उसका अपना एक अलग जातीय स्वभाव था; अन्तर जातीय स्वभाव का नहीं था; अन्तर, असल में, जीवन की परिस्थितियों और बाह्य वातावरण का था जो इंग्लैंड की परिस्थितियों और वातावरण से बिलकुल भिन्न थे।

अतएव, यह स्पष्ट है कि जाति की ऐसी कोई *एकमात्र* आवश्यक विशेषता नहीं होती जो उसे दूसरी जातियों से अलग करती हो। वास्तव में, यह बहुत सी विशेषताओं का जोड़ होता है और जब विभिन्न जातियों की तुलना की जाती है तो कभी एक विशेषता (जैसे जातीय स्वभाव) अधिक स्पष्टता से सामने आती है, तो कभी दूसरी (जैसे भाषा) और कभी कोई तीसरी

ही विशेषता (जैसे समान क्षेत्र अथवा आर्थिक परिस्थितियाँ) प्रमुख बन जाती हैं। जाति इन सभी विशेषताओं के समुदाय से बनती है।

बेयर का दृष्टिकोण, जो जाति को उसके जातीय स्वभाव के साथ मिला देता है, जाति को उसकी मिट्टी से जुदा कर देता है और उसे एक अदृश्य, अपने में ही निहित शक्ति में बदल देता है। इसके परिणामस्वरूप जाति एक जीवित और क्रियाशील वस्तु नहीं रहती, बल्कि एक रहस्यपूर्ण, अमूर्त और अलौकिक वस्तु बन जाती है। कारण कि, मैं एक बार फिर कह दूँ, यह कैसी यहूदी जाति है, जिसमें जार्जिया के, दागिस्तान के, रूस के और अमरीका के भी यहूदी शामिल हैं और जिसमें दूसरे देशों के यहूदी भी गिने जाते हैं, जब कि ये लोग एक-दूसरे की बात भी नहीं समझ सकते (क्योंकि वे भिन्न भाषाएं बोलते हैं), पृथ्वी के विभिन्न भागों में रहते हैं, कभी एक-दूसरे से मिलते नहीं और युद्ध का काल हो या शान्ति का, कभी एक-दूसरे के साथ मिलकर कुछ करते नहीं?

नहीं, सामाजिक-जनवाद ऐसी काग़ज़ी "जातियों" के लिए अपना जाति-सम्बन्धी कार्यक्रम नहीं बनाता। उसका मतलब केवल असली जातियों से है, जो हरकत में आती हैं और कार्यक्षेत्र में उतरती हैं और इसलिए जिनके बारे में अपनी नीति निर्धारित करना आवश्यक होता है।

स्पष्ट है कि बेयर *जाति* को वही वस्तु समझ रहा है जो कि *क़बीला* होता है, जब कि जाति एक ऐतिहासिक कोटि की चीज़ है और क़बीला एक नस्ली चीज़ है।

परन्तु, बेयर शायद खुद भी जानता है कि उसकी राय में ज़ोर नहीं है। अपनी किताब के शुरू में तो वह यह कह डालता है कि यहूदियों की एक अलग जाति है,[1] पर किताब के अन्त में वह अपनी ग़लती ठीक कर लेता है और कहता है कि "आम तौर पर, पूँजीवादी समाज उनके (यहूदियों के) लिए एक जाति के रूप में जीवित रहना असम्भव बना देता है",[2] क्योंकि वह उन्हें दूसरी जातियों के साथ घुला-मिला डालता है। इसका कारण,

१. उपर्युक्त। २. उपर्युक्त।

बेयर की राय में, यह मालूम पड़ता है कि "यहूदियों के पास बसने के लिए कोई बन्द (या सुरक्षित) स्थान नहीं है,"[1] जब कि मिसाल के लिए, चेक जाति के पास ऐसा एक इलाका है, और इसलिए, बेयर की राय में, चेक जाति, जाति के रूप में, जीवित रहेगी। संक्षेप में, इसका कारण क्षेत्र का अभाव है।

इस तरह तर्क करके बेयर यह सिद्ध करना चाहता था कि यहूदी मज़दूर जातीय स्वायत्त-शासन की माँग नहीं कर सकते,[2] परन्तु ऐसा करते हुए वह अनजाने में अपने इस सिद्धान्त का भी खण्डन कर गया कि जाति के लिए समान क्षेत्र का होना कोई आवश्यक विशेषता नहीं है।

लेकिन, बेयर और आगे जाता है। अपनी किताब के शुरू में उसने कहा है कि "यहूदियों की यद्यपि कोई *समान* भाषा नहीं है, फिर भी उनकी अपनी एक अलग जाति है।"[3] परन्तु, १३०वें पृष्ठ तक पहुँचते-पहुँचते वह एकदम पैंतरा बदल देता है और उसी निश्चय के साथ लिख डालता है कि *"निस्सन्देह, बिना एक समान भाषा के कोई जाति नहीं हो सकती।"*[4] (शब्दों पर ज़ोर मेरा है—स्तालिन)

बेयर यहाँ यह सिद्ध करना चाहता था कि "भाषा मनुष्यों के आपसी व्यवहार का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन है,"[5] परन्तु ऐसा करते हुए, वह अनजाने में एक ऐसी बात भी सिद्ध कर गया, जिसे वह हरगिज़ सिद्ध नहीं करना चाहता था—वह यह कि जातियों के बारे में उसका सिद्धान्त, जो समान भाषा के महत्त्व को नहीं मानता, थोथा है।

इस प्रकार, आदर्शवादी धागों से सिला-जुड़ा यह सिद्धान्त खुद अपना खण्डन कर डालता है।

१. उपर्युक्त। २. उपर्युक्त। ३. उपर्युक्त। ४. उपर्युक्त। ५. उपर्युक्त।

२

जातीय आन्दोलन

जाति केवल एक ऐतिहासिक कोटि की ही चीज़ नहीं है, वह एक विशेष युग, विकासोन्मुख पूँजीवाद के युग की ऐतिहासिक कोटि की चीज़ है। सामन्तवाद के विनाश और पूँजीवाद के विकास की प्रक्रिया, साथ ही लोगों के जातियों के रूप में मिलने की भी प्रक्रिया थी। उदाहरण के लिए, पश्चिमी यूरोप में यही हुआ था। जब पूँजीवाद विजय के पथ पर अग्रसर हुआ और उसने सामन्तवादी फूट और विश्रृङ्खलता पर विजय पाई तो अँग्रेज़ों, फ्रांसीसियों, जर्मनों, इटालियनों और दूसरे लोगों ने पाया कि वे अलग-अलग जातियों के रूप में एकताबद्ध हो गये हैं।

परन्तु इन सभी उदाहरणों में, जातियों के बनने का साथ ही यह भी मतलब था कि वे स्वतन्त्र जातीय राज्यों में भी बदल गई थीं। अँग्रेज़, फ्रांसीसी आदि केवल जातियाँ ही नहीं हैं, साथ-साथ ब्रिटिश या फ्रांसीसी, या अन्य राज्य भी बन गई थीं। आयरलैण्ड, जिसने इस प्रक्रिया में भाग नहीं लिया, इस आम तसवीर में एक अपवाद मात्र था।

पूर्वी यूरोप में मामला कुछ दूसरे ढंग से बढ़ा। पश्चिम में, जब कि जातियों ने विकास करके राज्यों का रूप धारण कर लिया, तभी पूर्व में बहु-जातीय राज्य क़ायम हुए जिनमें से प्रत्येक राज्य में अनेक जातियाँ पाई जाती थीं। मिसाल के लिए हैं—आस्ट्रिया, हंगरी और रूस। आस्ट्रिया में राजनीतिक दृष्टि से जर्मन सबसे अधिक विकसित निकले। उन्होंने आस्ट्रियन जातियों को एक राज्य में मिलाने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ली। हंगरी

में राज्य का संगठन करने की सबसे अधिक क्षमता मैगयारों में थी, जिन्हें हंगरी की जातियों की रीढ़ की हड्डी समझना चाहिए। उन्होंने हंगरी को एक किया। रूस में विभिन्न जातियों को एक साथ जोड़ने का काम रूसी जाति के लोगों ने किया जिनका नेतृत्त्व ऐतिहासिक रूप से विकसित, अभिजात वर्ग की एक शक्तिशाली और सुसंगठित सैनिक नौकरशाही कर रही थी।

पूर्व में मामला इसी तरह बढ़ा।

राज्यों के बनने की यह विशेष ढंग की प्रक्रिया उन्हीं जगहों में सम्भव हुई जहाँ सामन्तवाद नष्ट नहीं हुआ था, जहाँ पूँजीवाद का विकास बहुत कमज़ोर ढंग से हुआ था, और जहाँ वे जातियाँ जो पीछे रह गई थीं, अभी अपने को आर्थिक दृष्टि से एकताबद्ध जातियों में नहीं बदल सकी थीं।

परन्तु, आगे चलकर पूर्वी राज्यों में भी पूँजीवाद ने विकास करना आरम्भ किया। व्यापार और यातायात तथा सूचना के साधनों ने उन्नति की। बड़े-बड़े शहरों ने जन्म लिया। जातियाँ आर्थिक दृष्टि से संयुक्त होने लगीं। जो जातियाँ पिछड़ गई थीं, उनके भी शान्त जीवन में पूँजीवाद हलचल पैदा करने लगा। ये जातियाँ भी हरकत में आने लगीं। अखबारों और छापेखानों तथा नाट्यशालाओं के विकास ने, धारा-सभाओं (आस्ट्रिया में राइखश्राट और रूस में दूमा) की कार्यवाहियों ने "जातीय भावनाओं" को बलवती बनाने में सहायता की। नवजात बुद्धिजीवी वर्ग के मन में "जातीय विचारों" ने घर कर लिया और वह भी इसी दिशा में बढ़ने लगा।······

परन्तु जो जातियाँ पहले पीछे रह गई थीं और जिनमें अब स्वतन्त्र जीवन की चेतना पैदा हो रही थी, वे अब स्वतन्त्र जातीय राज्यों की रचना करने की स्थिति में नहीं थीं। जिन जातियों को प्रभुत्व प्राप्त था, राज्य-सत्ता उनके शासक वर्गों के हाथ में थी और ये वर्ग पिछड़ी हुई जातियों की स्वतन्त्रता की भावना को जोरों के साथ दबा रहे थे। पिछड़ी हुई जातियों में बहुत देर से जाग्रति पैदा हुई। वक्त उनके हाथ से निकल गया था!···

इस प्रकार, आस्ट्रिया में रहने वाले चेक, पोल आदि लोग जातियों में

बदल गए ; हंगरी में क्रोट आदि और रूस में लैट, लिथुआनियन, युक्राइनियन, जार्जियन, आर्मीनियन आदि जातियाँ बन गईं। पश्चिमी यूरोप में (आयरलैण्ड में) जो बात अपवाद के रूप में सामने आई थी, वह पूर्व में नियम बन गई।

पश्चिम में, आयरलैण्ड की विशेष स्थिति के कारण वहाँ एक जातीय (अथवा राष्ट्रीय) आन्दोलन ने जन्म लिया था। पूर्व में भी लाजिमी था कि जाग्रत जातियाँ इसी मार्ग पर बढ़ें।

इस प्रकार, वे परिस्थितियाँ तैयार हुईं जिनके कारण पूर्वी यूरोप की नवजात जातियों को संघर्ष का मार्ग अपनाना पड़ा।

निस्सन्देह, यह संघर्ष पूरी की पूरी जातियों के बीच शुरू नहीं हुआ। न आगे बढ़कर ही उसने यह रूप प्राप्त किया। शुरू से ही यह संघर्ष प्रभु जाति के शासक वर्गों और दलित जाति के बीच हुआ। आम तौर पर, इस संघर्ष में या तो दलित जाति का शहरी निम्न पूँजीपति वर्ग प्रभु जाति के बड़े पूँजीपति वर्ग के खिलाफ़ लड़ता है, (जैसा कि चेक जाति के जर्मन-विरोधी संघर्ष में हुआ), या दलित जाति का देहाती पूँजीपति वर्ग प्रभु जाति के जमींदारों के खिलाफ़ लड़ता है, (जैसा कि पोलैण्ड में युक्राइनियनों के संघर्ष में हुआ), और या दलित जातियों का सम्पूर्ण "जातीय (राष्ट्रीय)" पूँजीपति वर्ग प्रभु जाति के शासक अभिजात वर्ग के खिलाफ़ लड़ता है, (जैसा कि रूस में पोल, लिथुआनियन और युक्राइनियन लोगों के संघर्षों में हुआ)।

पूँजीपति वर्ग इस संघर्ष में नेतृत्व की भूमिका अदा करता है।

नवजात पूँजीपति वर्ग की सबसे बड़ी समस्या बाजार की समस्या होती है। उसका उद्देश्य होता है कि किसी तरह अपना माल बेचने में सफल हो और दूसरी जाति के पूँजीपतियों को प्रतियोगिता में हरा सके। इसीलिए, उसकी स्वाभाविक इच्छा होती है कि उसका "अपना", "घरेलू" बाजार उसके हाथों में रहे। पूँजीपति वर्ग राष्ट्रवाद या जातीयता का पहला सबक़ बाजार में पढ़ता है।

परन्तु, बात आम तौर पर बाजार तक ही सीमित नहीं रहती। प्रभु जाति की अर्द्ध-सामन्ती, अर्द्ध-पूँजीवादी नौकरशाही गिरफ़्तारियों और प्रतिबन्धों के अपने पुलिस के तरीक़ों द्वारा संघर्ष में हस्तक्षेप करती है। प्रभु जाति का पूँजीपति वर्ग, वह चाहे छोटे पूँजीपतियों का वर्ग हो चाहे बड़ों का, बड़ी "तेज़ी" के साथ और "फ़ैसलाकुन ढंग से" अपने प्रतिद्वन्दियों से निपटने में कामयाब हो जाता है। विभिन्न "शक्तियाँ" एक जूट कर ली जाती हैं और फिर "विदेशी" पूँजीपति वर्ग पर तरह-तरह के प्रतिबन्ध लगा दिये जाते हैं और आगे तो उनका खुलकर दमन होने लगता है। संघर्ष आर्थिक क्षेत्र से राजनीतिक क्षेत्र में फैल जाता है। "प्रतियोगियों" के आने-जाने पर बन्दिशें लगा दी जाती हैं, उनकी भाषा को दबाया जाता है, मताधिकार को सीमित कर दिया जाता है, स्कूल बन्द कर दिये जाते हैं, उनके धर्म पर प्रतिबन्ध लगाए जाते हैं और दूसरी तरह-तरह की कार्यवाहियाँ की जाती हैं। जाहिर है कि इन कार्यवाहियों का उद्देश्य प्रभु जाति के पूँजीपति वर्गों का हित-साधन करना ही नहीं होता, उनके द्वारा शासक नौकरशाही के संकीर्ण हितों की भी रक्षा की जाती है। परन्तु इन कार्यवाहियों का जो परिणाम होता है, उसकी दृष्टि से इस बात का कोई महत्त्व नहीं है। आस्ट्रिया-हंगरी हो, या रूस, हर जगह इस मामले में, पूँजीपति वर्ग और नौकरशाही दोनों ही साथ-साथ चलते हैं।

दलित जाति का पूँजीपति वर्ग, जिसे हर तरफ़ से दबाया जाता है, स्वभावतः हरकत में आता है। वह अपने "जाति-भाइयों" को पुकारता है, "मातृभूमि" का नारा बुलन्द करता है और दावा करता है कि उसके हितों का सवाल पूरी जाति के, पूरे राष्ट्र के हितों का सवाल है। "मातृभूमि" के···हितों की रक्षा करने के लिए वह अपने "देश-भाइयों" की सेना खड़ी करता है। "देश-भाई" भी उसकी पुकार को सदा अनसुनी नहीं करते। वे उसके झण्डे के नीचे आ खड़े होते हैं। दमन-चक्र का उन पर भी प्रभाव पड़ता है और उनके असन्तोष की आग भी भड़क उठती है।

इस प्रकार, जातीय या राष्ट्रीय आन्दोलन शुरू हो जाता है।

जातीय आन्दोलन की शक्ति इस बात पर निर्भर करती है कि उसमें जाति विशेष के आम लोग, मजदूर और किसान कितना भाग लेते हैं।

मजदूर वर्ग पूँजीवादी जातीयता (या पूँजीवादी राष्ट्रवाद) के झण्डे के नीचे आता है या नहीं, यह इस बात पर निर्भर करता है कि वर्ग-विरोध कितने बढ़ चुके हैं और मजदूर वर्ग की वर्ग-चेतना तथा संगठन कितनी हद तक बढ़ चुके हैं। वर्ग-चेतना-प्राप्त मजदूर श्रेणी के पास स्वयं अपना परखा हुआ झण्डा है; उसे पूँजीपति वर्ग के झण्डे के नीचे आने की कोई जरूरत नहीं होती।

जहाँ तक किसानों का सम्बन्ध है, जातीय आन्दोलन में उनका शामिल होना या न होना मुख्यतः इस बात पर निर्भर करता है कि दमन किस प्रकार का हो रहा है। यदि दमन का असर "भूमि" पर भी पड़ता है, जैसा कि आयरलैण्ड में था, तो किसान जनता तुरन्त जातीय या राष्ट्रीय आन्दोलन के झण्डे के नीचे आकर खड़ी हो जाती है।

दूसरी ओर, मिसाल के लिए, यदि जार्जिया में *रूसी-विरोधी* जातीयता गम्भीर रूप में नहीं पाई जाती तो इसका प्रधान कारण यह है कि वहाँ न तो रूसी ज़मींदार हैं और न बड़े रूसी पूँजीपति ही हैं जिनकी कार्यवाहियों से जनता में ऐसी जातीयता की भावना भड़के। जार्जिया में *आर्मीनियन-विरोधी* जातीयता है तो इसका कारण यह है कि वहाँ आज भी बड़े आर्मीनियन पूँजीपतियों का एक ऐसा वर्ग है जो छोटे और अभी तक असंगठित जार्जियन पूँजीपतियों को प्रतियोगिता में पीटकर उन्हें आर्मीनियन-विरोधी जातीयता की ओर ढकेल देता है।

उपरोक्त बातों के आधार पर, या तो जातीय और राष्ट्रीय आन्दोलन एक जन-आन्दोलन बन जाता है और बराबर बढ़ता जाता है, (जैसा कि आयरलैण्ड और गैलीशिया में हुआ), या वह छोटी-छोटी टक्करों में बदल जाता है, छोटे-छोटे झगड़ों और साइनबोर्डों की "लड़ाई" का रूप धारण कर लेता है (जैसा कि बोहीमिया के छोटे शहरों में देखा गया है)।

जातीय या राष्ट्रीय आन्दोलन का स्वरूप, जाहिर है, सब जगह एक सा नहीं होता। वह पूरी तरह इस पर निर्भर करता है कि आन्दोलन किन विभिन्न मांगों को लेकर उठा है। आयरलैण्ड में आन्दोलन पर किसानों की छाप है। बोहीमिया में "भाषा" का सवाल सबसे प्रमुख है। कहीं पर नागरिक समानता और धार्मिक स्वतन्त्रता की मांग पर सबसे ज़्यादा जोर दिया जा रहा है, तो कहीं कोई जाति अपने में ही से "अफ़सरों" के नियुक्त किए जाने या अपनी धारा-सभा के स्थापित किए जाने की मांग कर रही है। मांगों की विभिन्नता से आम तौर पर अकसर जाति की विभिन्न विशेषताएँ भी प्रकट होती हैं (जैसे भाषा, क्षेत्र, आदि)। यह बात ध्यान देने योग्य है कि आपको कहीं भी बेयर के "जातीय स्वभाव" से सम्बन्धित कोई मांग नहीं मिलेगी। और, यह स्वाभाविक बात है। "जातीय स्वभाव" *अपने आप में* एक अमूर्त वस्तु है, और जैसा कि जे० स्टैसर ने कहा था : "राजनीतिज्ञ इस वस्तु से कुछ नहीं बना सकते।"[1]

आम तौर पर, जातीय आन्दोलन का यही रूप और उसका यही स्वभाव होता है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, उससे यह बात साफ़ हो गई होगी कि *विकसित होते* हुए पूँजीवाद की परिस्थितियों में जातीय संघर्ष पूँजीवादी वर्गों का आपसी संघर्ष होता है। कभी-कभी पूँजीपति वर्ग मजदूर वर्ग को भी जातीय आन्दोलन में घसीटने में कामयाब हो जाता है, और तब जातीय आन्दोलन *बाहरी तौर पर* "राष्ट्र-व्यापी" स्वरूप धारण कर लेता है। परन्तु, यह बात बाहरी तौर पर ही होती है। जातीय आन्दोलन का *मूल तत्त्व* सदा एक पूँजीवादी संघर्ष का ही रहता है; मूलतः इस आन्दोलन से पूँजीपति वर्ग का ही लाभ होता है।

परन्तु, इसका यह मतलब नहीं है कि मजदूर वर्ग को जातीय उत्पीड़न की नीति के विरुद्ध संघर्ष नहीं करना चाहिए।

एक स्थान से दूसरे स्थान जाने पर प्रतिबन्ध लगाना, लोगों से वोट का

१. देखिए "डेर आरबीटर उण्ड डी नेशन", १९१२।

अधिकार छीन लेना, किसी भाषा को दबाना, स्कूलों को बन्द कर देना और दमन के दूसरे तरीके अपनाना—ये सब ऐसी बातें हैं जिनका मजदूरों पर अधिक नहीं तो कम से कम उतना असर तो पड़ता ही है जितना पूँजीपतियों पर पड़ता है। यदि ऐसी हालत क़ायम रहती है तो उसका केवल यही असर हो सकता है कि दलित जातियों के मजदूर वर्ग के बुद्धिजीवी तत्त्वों का स्वतन्त्र विकास रुक जाय। यदि तातार या यहूदी मजदूरों को सभाओं और भाषणों में अपनी भाषा का प्रयोग करने की इजाजत नहीं है और यदि उनके स्कूल बन्द कर दिये गए हैं, तो उनकी बौद्धिक शक्ति के पूर्ण विकास की कोई भी सम्भावना नहीं रहती।

परन्तु, एक और भी कारण है जिससे जातीय उत्पीड़न की नीति मजदूर वर्ग के हित में बहुत घातक सिद्ध होती है। वह यह कि ऐसी नीति के परिणामस्वरूप जनता का ध्यान सामाजिक प्रश्नों, वर्ग-संघर्ष के प्रश्नों से हटकर जातियों के प्रश्न की ओर चला जाता है, ऐसे प्रश्नों की ओर चला जाता है जो मजदूर वर्ग और पूँजीपति वर्ग दोनों ही के लिए "समान" प्रश्न हैं। और, इससे "वर्ग-हितों के सामञ्जस्य" के झूठे प्रचार के लिए जमीन तैयार हो जाती है, मजदूर वर्ग के वर्ग-हितों को पीछे डालने में मदद मिलती है और मजदूरों को बौद्धिक दृष्टि से ग़ुलाम बनाने में सहायता मिलती है। इससे सभी जातियों के मजदूरों को एकताबद्ध करने के काम में बड़ी कठिनाई पैदा हो जाती है। यदि पोल मजदूरों का अधिकांश आज भी पूँजीवादी जातीयतावादियों की मानसिक दासता में फँसा हुआ है और अन्तरजातीय मजदूर-आन्दोलन से अलग खड़ा हुआ है, तो उसका मुख्य कारण यही है कि "शासन करने वालों" की बरसों से चली आई पोल-विरोधी नीति से इस दासता के लिए जमीन तैयार होती है और उससे मुक्त होने के संघर्ष में बाधा पड़ती है।

किन्तु, दमन की नीति यहीं समाप्त नहीं होती। अकसर वह *उत्पीड़न* की "व्यवस्था" से आगे बढ़कर एक जाति को दूसरी जाति के ख़िलाफ़ *उकसाने* और हत्याकाण्ड तथा क़त्ले-आम कराने की "व्यवस्था" बन

जाती है। जाहिर है, हर जगह और हमेशा ही हत्याकाण्ड मचवाना सम्भव नहीं होता, परन्तु जहाँ कहीं भी—प्राथमिक नागरिक अधिकारों के अभाव में—यह सम्भव होता है, वहाँ ये हत्याकाण्ड अति भयंकर रूप धारण कर लेते हैं और आँसुओं और खून में मजदूरों की एकता के डूब जाने का खतरा पैदा हो जाता है। काकेशस और दक्षिणी रूस में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। उकसाने की नीति का उद्देश्य होता है—"फूट डालो और राज करो!" और जहाँ कहीं यह नीति सफल हो जाती है, वहाँ मजदूरों पर मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ता है और राज्य में रहने वाली विभिन्न जातियों के मजदूरों को एकजूट करने के काम में बहुत ही गम्भीर बाधा बन जाती है।

परन्तु मजदूरों का हित तो इस बात में है कि उनके सारे भाई-बन्द, वे चाहे किसी भी जाति के हों, पूरी तरह एकताबद्ध हो जायँ और उनकी एक संयुक्त अन्तरराष्ट्रीय सेना बन जाय; उनका हित इस बात में है कि मजदूर, वे किसी भी जाति के क्यों न हों, पूँजीपति वर्ग की मानसिक गुलामी से जल्द से जल्द और पूर्ण रूप से मुक्ति पाएँ और उनकी बौद्धिक शक्तियों का पूर्ण और स्वतन्त्र विकास हो।

इसीलिए, मजदूर जातीय उत्पीड़न की प्रत्येक नीति का—फूहड़ से फूहड़ नीति से लेकर अति चतुर नीति तक का—डटकर मुकाबिला करते हैं और बराबर करते रहेंगे। वे जातियों को एक-दूसरे के खिलाफ़ उकसाने की नीति के प्रत्येक रूप का विरोध करते हैं और बराबर करते रहेंगे।

अतएव, सभी देशों में सामाजिक-जनवाद जातियों के आत्म-निर्णय के अधिकार की घोषणा करता है।

आत्म-निर्णय के अधिकार का अर्थ यह है कि किसी जाति के भविष्य का निर्णय स्वयं वह जाति ही कर सकती है; और किसी को भी उस जाति के जीवन में *ज़बरदस्ती* हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। किसी भी जाति को हक़ नहीं है कि दूसरी जाति के स्कूलों और अन्य संस्थाओं

को *नष्ट करे*, उसके रीति-रिवाजों और परम्पराओं पर *प्रहार करे*, उसकी भाषा का *दमन करे*, या उसके अधिकारों को *छीने*।

ज़ाहिर है, इसका यह मतलब नहीं है कि सामाजिक-जनवाद किसी जाति के प्रत्येक रीति-रिवाज या प्रथा का समर्थन करेगा। किसी भी जाति के साथ ज़बरदस्ती होगी तो सामाजिक-जनवाद उसका विरोध करेगा और उस जाति के स्वयं अपने भाग्य का निर्णय करने के अधिकार का समर्थन करेगा। पर, साथ ही, वह उस जाति के बुरे रीति-रिवाजों, बुरी प्रथाओं के खिलाफ़ भी आन्दोलन करेगा ताकि उस जाति के मेहनतकश लोग अपने को ऐसे रीति-रिवाजों और प्रथाओं से मुक्त कर सकें।

आत्म-निर्णय के अधिकार का अर्थ है कि प्रत्येक जाति को अपनी ही इच्छा के अनुसार अपने जीवन की व्यवस्था करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। वह चाहे तो स्वायत्त-शासन के आधार पर अपने जीवन की व्यवस्था करे, चाहे दूसरी जातियों के साथ मिलकर संघ बना ले और चाहे तो सबसे एकदम अलग हो जाय। सभी जातियाँ पूर्ण सत्ताशाली हैं। सभी जातियाँ समान हैं।

ज़ाहिर है, इसका यह मतलब नहीं कि सामाजिक-जनवाद किसी जाति की प्रत्येक माँग का समर्थन करेगा। जाति को तो यह भी अधिकार है कि वह चाहे तो फिर से पुराने ढर्रे को चालू कर दे। परन्तु, इसका यह मतलब नहीं कि यदि उस जाति की कोई संस्था ऐसा निर्णय करती है तो सामाजिक-जनवाद उसका भी समर्थन करेगा। सामाजिक-जनवाद के कर्तव्य और जाति के अधिकार दो बिलकुल अलग-अलग चीजें हैं। सामाजिक-जनवाद मजदूर वर्ग के हितों की रक्षा करता है। जाति में कई वर्ग शामिल होते हैं।

जातियों के आत्म-निर्णय के अधिकार के लिए लड़ने में सामाजिक-जनवाद का उद्देश्य यह है कि जातीय उत्पीड़न की नीति को खतम करे, उसको असम्भव बना दे और इस प्रकार जातियों के बीच होने वाले संघर्ष के कारण को दूर करे, इस संघर्ष की तेजी को मिटा दे और उसे कम से कम कर डाले।

वर्ग-चेतन मजदूर वर्ग की नीति और पूँजीपति वर्ग की नीति का बुनियादी भेद यही है। पूँजीपति वर्ग जातीय संघर्ष को भड़काने और बढ़ाने का प्रयत्न करता है और जातीय आन्दोलन को लम्बा खींचने और उग्र बनाने की कोशिश करता है।

और, यही कारण है कि वर्ग-चेतन मजदूर वर्ग पूँजीपति वर्ग के "जातीय" झण्डे के नीचे नहीं आ सकता।

यही कारण है कि बेयर द्वारा प्रतिपादित तथाकथित "विकासमान जातीय" नीति मजदूर वर्ग की नीति नहीं बन सकती। बेयर का अपनी "विकासमान जातीय" नीति को "आधुनिक मजदूर वर्ग"[1] की नीति बताने का प्रयत्न मजदूरों के वर्ग-संघर्ष को जातियों के संघर्ष के हितों के आधीन बनाने का ही प्रयत्न है।

जातीय आन्दोलन बुनियादी तौर पर एक पूँजीवादी आन्दोलन है और उसका भविष्य स्वाभाविक तौर पर पूँजीपति वर्ग के भविष्य के साथ जुड़ा हुआ है। जातीय आन्दोलन अन्तिम रूप से उसी समय समाप्त होगा जब पूँजीपति वर्ग समाप्त हो जायगा। केवल समाजवाद के अन्तर्गत ही शान्ति पूर्ण रूप से स्थापित हो सकती है। परन्तु पूँजीवादी ढाँचे के रहते हुए भी, यह सम्भव है कि जातीय संघर्ष को एकदम कम कर दिया जाय, उसकी जड़ें काट दी जायँ और मजदूर वर्ग के लिए उसे कम से कम खतरनाक बना दिया जाय। स्विट्जरलैण्ड और अमरीका की मिसालों से यह बात सिद्ध हो जाती है। इसके लिए आवश्यक है कि देश का जनवादीकरण हो और जातियों को स्वतन्त्र विकास का अवसर दिया जाय।

---

१. देखिये बेयर की पुस्तक।

३

समस्या को पेश कैसे किया जाय ?

प्रत्येक जाति को स्वतन्त्रतापूर्वक अपने भाग्य के निर्णय करने का अधिकार है। उसे हक़ हासिल है कि अपने जीवन की जैसी उचित समझे व्यवस्था करे। पर, ज़ाहिर है, ऐसा करते हुए वह दूसरी जातियों के अधिकारों का हनन नहीं कर सकती। यह बात निर्विवाद है।

परन्तु प्रश्न यह है कि किसी जाति को अपने अधिकतर लोगों के, और सबसे अधिक मज़दूर वर्ग के, हितों का ध्यान रखते हुए, *किस प्रकार* अपने जीवन की व्यवस्था करनी चाहिए और अपना भावी विधान *किस ढंग का* बनाना चाहिए ?

प्रत्येक जाति को स्वायत्त-शासन के तरीक़े पर अपने जीवन की व्यवस्था करने का अधिकार है। प्रत्येक को एकदम अलग तक हो जाने का भी अधिकार है। परन्तु, इसका यह मतलब नहीं कि हर हालत में उसे यही करना चाहिए। स्वायत्त-शासन या एकदम अलग हो जाना हर परिस्थिति में हमेशा ही किसी जाति के लिए, अर्थात् उसके अधिकतर लोगों के लिए यानी उसके मेहनतकश तबक़ों के लिए लाभदायक नहीं हो सकता। मान लीजिए कि ट्रांसकाकेशिया के तातार एक जाति के रूप में अपनी धारा-सभा बुलाएँ और अपने जागीरदारों, अपने मुल्लाओं के प्रभाव में आकर वहाँ यह तै कर दें कि पुरानी समाज-व्यवस्था फिर से क़ायम होनी चाहिए और उन्हें राज्य से अलग हो जाना चाहिए। आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के

अनुसार, उन्हें ऐसा करने का पूरा हक़ है। परन्तु, क्या ऐसा करना तातार जाति के मेहनतकश तबक़ों के हित में होगा ? और, जब जागीरदार और मुल्ले जातियों का सवाल हल करने में जनता का नेतृत्व अपने हाथों में ले रहे हों, तब क्या सामाजिक-जनवाद चुपचाप खड़ा देखता रहेगा ? ऐसी हालत में क्या सामाजिक-जनवाद को मामले में दख़ल देकर, पूरी जाति की इच्छा को एक निश्चित दिशा में मोड़ने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए ? ऐसी हालत में उसे क्या इस समस्या का एक ऐसा निश्चित हल लेकर सामने नहीं आना चाहिए जो तातार जनता के लिए सबसे अधिक लाभदायक हो ?

परन्तु, वह कौन सा हल है जो मेहनतकश जनता के सबसे अधिक हित में होगा ? स्वायत्त-शासन, संघ-राज्य, या एकदम अलग हो जाना ?

ये सारी समस्याएँ ऐसी हैं जिनका हल जाति-विशेष की ठोस ऐतिहासिक परिस्थितियों पर ही निर्भर करता है।

यही नहीं। परिस्थितियाँ भी, दूसरी तमाम चीज़ों की तरह बदलती रहती हैं; और एक ख़ास समय में जो निर्णय बिलकुल सही हो, वही दूसरे समय में सर्वथा अनुपयुक्त हो सकता है।

उन्नीसवीं सदी के मध्य में मार्क्स इस पक्ष में थे कि पोलैण्ड का जो भाग रूस में शामिल है, उसे रूस से अलग हो जाना चाहिए। मार्क्स की राय बिलकुल सही थी, क्योंकि उस वक्त एक उन्नत संस्कृति को एक पिछड़ी हुई संस्कृति की आधीनता से मुक्त करने का सवाल था जो कि उन्नत संस्कृति को नष्ट किये डाल रही थी और उस वक्त यह केवल एक सैद्धान्तिक या सिर्फ़ बहस का सवाल नहीं था, बल्कि एक अमली सवाल था, जीवन की ठोस वास्तविकता का सवाल था···

पर, उन्नीसवीं सदी के अन्त तक पोलैण्ड के मार्क्सवादी पोलैण्ड के अलग हो जाने के नारे का विरोध करने लगे थे और उनकी राय भी बिलकुल सही थी; क्योंकि बीच के पचास वर्षों में परिस्थिति में बड़े गहरे परिवर्तन हो चुके थे जिनके परिणामस्वरूप रूस और पोलैण्ड आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से एक-दूसरे के निकट आ गये थे। इसके अलावा, इन

पचास वर्षों में पोलैण्ड के अलग होने का सवाल एक असली सवाल के बजाय मात्र सैद्धान्तिक बहस का सवाल बन चुका था जिसमें शायद प्रवासी बुद्धिजीवियों के सिवा और किसी को विशेष दिलचस्पी नहीं थी।

जाहिर है, इससे यह सम्भावना समाप्त नहीं होती कि फिर कुछ ऐसी अन्दरूनी और बाहरी परिस्थितियाँ तैयार हो जायँ जिनमें पोलैण्ड के अलग होने का सवाल दोबारा वास्तविक सवाल बन जाय।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जातियों की समस्या का हल निकालने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि जातियों के विकास की ऐतिहासिक परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाय।

जाति-विशेष की आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों से ही हमें वह एकमात्र कुञ्जी मिलती है जिसके द्वारा हम यह तै कर सकते हैं कि उस जाति को अपने जीवन की व्यवस्था *किस प्रकार की* करनी चाहिए और उसका भावी विधान *किस ढंग का* होना चाहिए। सम्भव है कि प्रत्येक जाति की समस्या को एक विशेष ढंग से हल करना पड़े। यदि किसी प्रश्न पर द्वन्द्वात्मक दृष्टि से विचार करना सबसे अधिक आवश्यक है तो वह जातियों का प्रश्न ही है।

इसीलिए, बुन्द की देखादेखी, जातियों के प्रश्न को झटपट "हल" कर डालने का जो एक तरीका आजकल चल निकला है, हमें उसका सख्त विरोध करना चाहिए। हमारा इशारा उन लोगों की तरफ़ है जो बड़ी आसानी से यह कह डालते हैं कि आस्ट्रियन तथा दक्षिण-स्लाव सामाजिक-जनवादियों[1] ने जातियों के प्रश्न को मानो हल करके दिखा दिया है; अब रूसी सामाजिक-जनवादियों को भी उनका अनुसरण करना चाहिए। ऐसा कहते समय, ये लोग यह मान लेते हैं कि आस्ट्रिया के लिए जो कुछ सही मालूम पड़ता है, वह रूस के लिए भी सही है। ये लोग यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात बिलकुल भूल जाते हैं कि पूरे रूस की और रूस

१. दक्षिण-स्लाव सामाजिक-जनवादी पार्टी आस्ट्रिया के दक्षिणी भाग में काम करती है।

में रहने वाली प्रत्येक जाति के जीवन की ठोस ऐतिहासिक परिस्थितियों पर भी विचार करना आवश्यक है।

मिसाल के लिए, सुनिये कि बुन्द का प्रसिद्ध नेता वी० कौस्सोव्स्की क्या कहता है :

"जब बुन्द की चौथी कांग्रेस में इस प्रश्न (अर्थात् जातियों के प्रश्न—स्तालिन) के सिद्धान्तों पर बहस हुई तो कांग्रेस के एक सदस्य के इस सुझाव का सबने स्वागत किया कि इस प्रश्न को दक्षिण-स्लाव सामाजिक-जनवादी पार्टी के प्रस्ताव का अनुसरण करते हुए हल किया जाय।"[1]

और, इसका परिणाम यह निकला कि "कांग्रेस ने एकमत से"··· जातीय स्वायत्त-शासन का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया।

और बस, मामला ख़तम हो गया। रूस की वास्तविक परिस्थितियों का कोई विवेचन नहीं किया गया। रूस में रहने वाले यहूदियों की हालत का पता नहीं लगाया गया। पहले दक्षिण-स्लाव सामाजिक-जनवादी पार्टी का हल उधार माँग लिया गया, फिर उसको "सहमति" दे दी गई, और अन्त में उसे "एकमत से स्वीकार कर लिया गया!" रूस में जातियों के प्रश्न को पेश करने और "हल करने" का बुन्द का तरीक़ा यही है···

सच्ची बात यह है कि आस्ट्रिया और रूस की परिस्थितियाँ बिलकुल भिन्न हैं। यही कारण है कि जब आस्ट्रिया के सामाजिक-जनवादियों ने ब्रून *में (१८९९ में), दक्षिण-स्लाव सामाजिक-जनवादी पार्टी के प्रस्ताव का (चन्द महत्त्वहीन संशोधनों के साथ) अनुकरण करते हुए, अपना राष्ट्रीय कार्यक्रम पास किया तो उन्होंने समस्या पर एक बिलकुल ग़ैर रूसी ढंग से विचार किया और बिलकुल ग़ैर रूसी ढंग से उसे हल किया।

पहले देखिए कि समस्या को पेश कैसे किया गया। जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन के आस्ट्रियन सिद्धान्तकार, ब्रून के राष्ट्रीय कार्यक्रम तथा दक्षिण-स्लाव सामाजिक-जनवादी पार्टी के प्रस्ताव के टीकाकार, स्प्रिंगर और बेयर इस समस्या को किस तरह पेश करते हैं?

---

१. वी० कौस्सोव्स्की : "जातियों की समस्याएँ", १९०७।

स्प्रिंगर साहब फ़रमाते हैं :

"कई जातियों का एक राज्य बनना सम्भव है या नहीं, और विशेष रूप से, आस्ट्रिया में रहने वाली जातियों के लिए एक राजनीतिक इकाई में मिलना आवश्यक है या नहीं, यह एक ऐसा सवाल है जिसका हम यहां जवाब देने की कोशिश नहीं करेंगे, बल्कि मान लेंगे कि यह सवाल तै हो चुका है। कोई भी, जो इस सम्भावना को और इस आवश्यकता को नहीं मानता, उसके लिए हमारा यह विवेचन, ज़ाहिर है, बिलकुल व्यर्थ होगा। हम जिस प्रश्न पर विचार कर रहे हैं वह यह है : इन जातियों को चूंकि एक-साथ मिलकर **रहना ही पड़ेगा,** इसलिए पता लगाना चाहिए कि किस **क़ानूनी** व्यवस्था के मातहत वे **सबसे अच्छे ढंग से साथ रह सकेंगी।**"[१] (शब्दों पर ज़ोर स्प्रिंगर का है।)

अतएव, यह सज्जन अपने सोचने की शुरूआत ही इस बात से करते हैं कि आस्ट्रिया की राजनीतिक एकता को क़ायम रखना ही है।

बेयर साहब का कहना भी यही है :

"इसलिए, हम यह मानकर चलते हैं कि आस्ट्रिया में रहने वाली जातियां वर्तमान राजनीतिक संघ में शरीक रहेंगी और तब यह पता लगाने की कोशिश करते हैं कि इस संघ के मातहत ये जातियां अपने आपसी सम्बन्धों और राज्य के साथ अपने सम्बन्धों की क्या व्यवस्था करेंगी ?"[२]

यहाँ भी सबसे प्रमुख बात आस्ट्रिया की राजनीतिक एकता को ही माना गया है।

क्या रूस के सामाजिक-जनवादी भी सवाल को *इसी तरह* पेश कर सकते हैं ? नहीं, वे इस तरह पेश नहीं कर सकते। वे इसलिए इस सवाल को इस तरह पेश नहीं कर सकते कि उनका पहला ही सिद्धान्त जातियों के आत्म-निर्णय के अधिकार का है, जिसके अनुसार प्रत्येक जाति को अलग हो जाने का भी अधिकार प्राप्त है।

यहाँ तक कि रूसी सामाजिक-जनवादियों की दूसरी कांग्रेस में बुन्दवादी गोल्डब्लाट को भी यह स्वीकार करना पड़ा था कि रूस के सामाजिक-

---

१. स्प्रिंगर, "जातियों की समस्या।"

२. बेयर : "जातियों का प्रश्न और सामाजिक-जनवाद।"

जनवादी आत्म-निर्णय के सिद्धान्त को नहीं त्याग सके। उस समय गोल्डब्लाट ने कहा था :

"आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के ख़िलाफ़ कुछ भी नहीं कहा जा सकता। यदि कोई जाति स्वतन्त्र होने का प्रयत्न कर रही है तो हमें उसका विरोध नहीं करना चाहिए। यदि पोलैंड रूस के साथ "क़ानूनी विवाह" करने को राज़ी नहीं है तो हमें इस मामले में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।"

यह सब सही है। परन्तु इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि आस्ट्रिया और रूस के सामाजिक-जनवादी जिन बातों को बुनियाद मानकर चलते हैं, वे एक सी नहीं हैं, बल्कि एक-दूसरे की बिलकुल उल्टी हैं। इसके बाद भी, क्या आस्ट्रिया वालों के जातीय कार्यक्रम की नक़ल करने का कोई सवाल उठ सकता है?

इसके अलावा, आस्ट्रिया वालों को आशा है कि वे धीरे-धीरे, छोटे-मोटे सुधारों के ज़रिये ही "जातियों की स्वतंत्रता" प्राप्त कर लेंगे। अमली क़दम के रूप में उन्होंने जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन का प्रस्ताव किया है, पर वे किसी उग्र परिवर्तन की, या स्वतंत्रता पाने के लिए किसी जनवादी आन्दोलन की आशा नहीं करते। जनवादी आन्दोलन की बात तो उनके दिमाग़ में भी नहीं आती। दूसरी ओर, रूस के मार्क्सवादी "जातियों की स्वतंत्रता" को एक मुमकिन उग्र परिवर्तन से और स्वतंत्रता के जनवादी आन्दोलन से बंधा हुआ देखते हैं और सुधारों पर भरोसा करने के लिए कोई आधार नहीं पाते। और, इससे रूस में रहने वाली जातियों के मुमकिन भविष्य का मामला बुनियादी तौर पर बदल जाता है।

बेयर साहब ने कहा है :

"ज़ाहिर है, किसी बड़े निर्णय, किसी साहसी क़दम के फलस्वरूप जातीय स्वायत्त शासन के मिलने की बहुत कम सम्भावना है। आस्ट्रिया एक-एक पग धरता हुआ, बहुत धीरे-धीरे विकास करता हुआ, और एक कठिन संघर्ष में से गुज़रता हुआ जातीय स्वायत्त शासन की ओर बढ़ेगा। और इस संघर्ष के कारण यहाँ की धारा-सभा और शासन-प्रबन्ध सदा पंगु अवस्था में फँसे रहेंगे। नया विधान धारा-सभा के किसी एक बड़े क़दम से नहीं

आएगा, बल्कि अलग-अलग प्रान्तों तथा अलग-अलग जन-समुदायों के लिए बनाये गए बहुत से क़ानूनों के ज़रिये उसका जन्म होगा।"[1]

स्प्रिंगर भी यही कहता है। उसने लिखा है :

"मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि इस प्रकार की संस्थाएँ (जातीय स्वायत-शासन के यंत्र—स्तालिन) एक वर्ष में, या एक दशाब्दी में भी, नहीं बना करतीं। प्रशा के शासन-प्रबन्ध का पुनर्संगठन करने में ही बहुत समय लग गया था...अपने शासन-प्रबन्ध की बुनियादी संस्थाओं को अन्तिम रूप से स्थापित करने में प्रशा वालों को बीस वर्ष लग गये थे। इसलिए, कोई यह न समझे कि मुझे इस बारे में कोई भ्रम है कि आस्ट्रिया में कितना समय लगेगा और कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।"[2]

बड़ा साफ़ और निश्चित कथन है। लेकिन, क्या रूस के मार्क्सवादी जातियों के प्रश्न को "साहसी क़दमों" से अलग कर सकते हैं। क्या वे "जातियों की स्वतंत्रता" प्राप्त करने के लिए आंशिक सुधारों पर या "बहुत से क़ानूनों पर" भरोसा कर सकते हैं? और यदि वे ऐसा नहीं कर सकते, यदि उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए तो क्या इससे यह बात साफ़ नहीं हो जाती कि आस्ट्रिया वालों और रूसियों के लड़ने के तरीक़े, और जिस ओर वे बढ़ रहे हैं वे दिशाएँ, बिलकुल भिन्न हैं? ऐसी हालत में, रूसी आस्ट्रिया वालों के जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन के एकांगी और फटीचर सिद्धान्त तक अपने को कैसे सीमित रख सकते हैं? दो ही बातें हैं : या तो जो लोग आस्ट्रिया वालों से उधार लेने के पक्ष में हैं वे रूस में "साहसी क़दमों" पर भरोसा नहीं करते, या यदि करते हैं तो कहना पड़ेगा कि इन "बेचारों को पता नहीं है कि वे क्या कर रहे हैं।"

अन्तिम बात यह है कि रूस और आस्ट्रिया में आज जो तात्कालिक काम सामने हैं, वे बिलकुल भिन्न हैं और इसलिए दोनों देशों में जातियों की समस्या को हल करने के लिए बिलकुल भिन्न तरीक़े अपनाना आवश्यक है। आस्ट्रिया में आजकल वैधानिकता का बोलबाला है; वहाँ पार्लामेण्ट या धारा-सभा को अलग करके कोई विकास नहीं हो सकता। परन्तु, जातीय पार्टियों के गम्भीर झगड़ों के कारण आस्ट्रिया में अकसर वैधानिक जीवन

१. बेयर : "जातियों का प्रश्न।" २. स्प्रिंगर, "जातीयता की समस्या।"

और पार्लामेण्ट का काम एकदम ठप हो जाता है। यही कारण है कि इतने लम्बे समय से आस्ट्रिया एक ऐसे राजनीतिक संकट में फँसा हुआ है जो कभी दूर नहीं होता। अतएव, आस्ट्रिया में जातियों की समस्या राजनीतिक जीवन का केन्द्र-बिन्दु बन गई है। वह वहाँ की प्रधान समस्या है। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं यदि आस्ट्रिया के सामाजिक-जनवादी राजनीतिज्ञ सबसे पहले जातीय झगड़ों को किसी न किसी तरह सुलझाने का यत्न करते हैं और उसके लिए, जाहिर है, मौजूदा पार्लामेण्टी व्यवस्था को आधार बनाते हैं और पार्लामेण्टी तरीक़ों को अपनाते हैं........

रूस में ऐसा नहीं है। सबसे पहले तो रूस में भगवान् की दया* से पार्लामेन्ट नहीं है, दूसरे—और यह मुख्य बात है—रूस के राजनीतिक जीवन का केन्द्र-बिन्दु जातियों की समस्या नहीं, खेती की समस्या है। इसलिए रूसी समस्या का भाग्य, और इसलिए, जातियों की "स्वतन्त्रता" भी, रूस में खेती की समस्या के हल से जुड़ी हुई है। यानी, यह दोनों बातें सामन्तवाद के अवशेषों को नष्ट करने, अर्थात् देश का जनवादीकरण करने के सवाल से जुड़ी हुई हैं। यही कारण है कि रूस में जातियों की समस्या एक स्वतन्त्र एवं निर्णायक समस्या नहीं है, बल्कि देश की आज़ादी की आम और अधिक महत्त्वपूर्ण समस्या का ही एक भाग है।

"आस्ट्रिया की पार्लामेन्ट की निरर्थकता का मुख्य कारण", स्प्रिंगर लिखते हैं, "यही है कि हर सुधार से जातीय पार्टियों में नये झगड़े खड़े हो जाते हैं, जो उनकी एकता को भंग करते हैं। इसलिए विभिन्न पार्टियों के नेता ऐसी हर चीज़ से दूर भागते हैं जिसमें सुधार की बू आती हो। आस्ट्रिया में उन्नति केवल उसी हालत में हो सकती है कि विभिन्न जातियों को अनुल्लंघनीय क़ानूनी अधिकार दे दिए जायँ, ताकि उन्हें पार्लामेन्ट में सदा लड़ाकू जातीय दल बनाए रखने की कोई ज़रूरत न रहे और वे अपना ध्यान आर्थिक तथा सामाजिक प्रश्नों को हल करने की ओर लगा सकें।"[1]

बेयर ने भी यही कहा है:

"राज्य के लिए जातियों के बीच शान्ति स्थापित करना सबसे पहले आवश्यक है। राज्य इस बात की इजाज़त नहीं दे सकता कि भाषा के मूर्खता भरे प्रश्न को लेकर, या

१. स्प्रिंगर: "जातियों की समस्या।"

भाषावार प्रदेशों की सीमा के सवाल पर उत्तेजित लोगों के हर झगड़े के कारण, या हर नये स्कूल को लेकर पार्लामेन्ट का सारा काम ही रुक जाय।"[1]

इतना तो स्पष्ट है, परन्तु साथ ही यह बात भी कम स्पष्ट नहीं है कि रूस में जातियों का प्रश्न एक बिलकुल दूसरे धरातल पर पाया जाता है। रूस में उन्नति होगी या नहीं, इसका फ़ैसला जातियों के प्रश्न के द्वारा नहीं, बल्कि खेती के प्रश्न के द्वारा होगा। जातियों का प्रश्न यहाँ एक आश्रित प्रश्न है।

और, इसीलिए दोनों देशों में सवाल को दो अलग-अलग तरीक़ों से पेश किया जाता है, दो अलग-अलग सम्भावनाएँ और संघर्ष की ढब देखी जाती हैं, और तात्कालिक काम भी दोनों जगहों में विभिन्न हैं। क्या यह बात साफ़ नहीं है कि ऐसी हालत में केवल वे ही लोग आस्ट्रिया की नक़ल करने और वहाँ का कार्यक्रम उधार लेने की बात सोच सकते हैं जो केवल पण्डिताई झाड़ना जानते हैं और देश तथा काल का विचार किए बग़ैर जातियों की समस्या को "हल" करना चाहते हैं।

फिर से कहा जाय तो जातीय समस्या की कुंजी यही है कि ठोस ऐतिहासिक परिस्थितियों के अध्ययन से शुरू किया जाय और समस्या को द्वन्द्वात्मक ढंग से पेश किया जाय। इस समस्या को पेश करने का द्वन्द्वात्मक ढंग ही एक सही रास्ता है।

---

१. बेयर : "जातियों का प्रश्न।"

४

जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन

हमने ऊपर बताया कि आस्ट्रिया के जातीय कार्यक्रम का रंग-रूप और सवाल को पेश करने का तरीक़ा ऐसा है कि रूसी मार्क्सवादी सीधे-सीधे आस्ट्रिया के सामाजिक-जनवादियों का अनुकरण नहीं कर सकते और उनके कार्यक्रम को अपना कार्यक्रम नहीं मान सकते।

अब उस कार्यक्रम पर भी विचार कर लिया जाय।

आस्ट्रिया के सामाजिक-जनवादियों का जातीय कार्यक्रम क्या है?

उनका कार्यक्रम है—जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन, या दो शब्दों में: सांस्कृतिक स्वराज्य।

इसका मतलब पहले तो यह है कि स्वायत्त-शासन का अधिकार बोहीमिया या पोलैण्ड को नहीं मिलेगा, जहाँ अधिकतर चेक अथवा पोल लोगों की आबादी है; बल्कि यह अधिकार आम चेक या पोल लोगों को दिया जायगा, चाहे वे कहीं भी रहते हों और आस्ट्रिया के किसी भी भाग में बसते हों।

इसीलिए, इस स्वायत्त-शासन के लिए *जातीय* विशेषण का प्रयोग किया गया है, न कि क्षेत्रीय का।

दूसरे, इसका मतलब यह है कि आस्ट्रिया के विभिन्न भागों में बिखरे हुए चेक, पोल, जर्मन और दूसरे लोगों को, व्यक्तिगत रूप से एक-एक आदमी को अलग-अलग लेकर, संयुक्त जातियों में संगठित किया जायगा

और ये जातियाँ आस्ट्रिया के राज्य का अंग बनेंगी। इस प्रकार, आस्ट्रिया कई स्वायत्त-शासन-प्राप्त क्षेत्रों का एक संघ नहीं होगा, बल्कि चन्द स्वायत्त-शासन-प्राप्त जातियों का एक संघ होगा और इलाक़ों या क्षेत्रों का इसमें कोई खयाल नहीं रखा जायगा।

तीसरे, इसका मतलब यह है कि इस उद्देश्य को सामने रखकर पोल, चेक आदि के लिए जो जातीय संस्थाएँ बनाई जायँगी, उनका अधिकार केवल "सांस्कृतिक" प्रश्नों तक सीमित रहेगा और वे "राजनीतिक" प्रश्नों में टांग नहीं अड़ाने पायेंगी, विशुद्ध राजनीतिक प्रश्न आस्ट्रिया की पार्लामेन्ट (राइखश्राट) के लिए छोड़ दिये जायँगे।

इसीलिए, इस स्वायत्त-शासन को *सांस्कृतिक* भी कहा गया है और उसे जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन के नाम से पुकारा गया है।

नीचे हम आस्ट्रिया की सामाजिक-जनवादी पार्टी के उस कार्यक्रम का पूरा मसविदा दे रहे हैं जो उसने सन १८९९ में ब्रून कांग्रेस में स्वीकार किया था।[1]

इस बात का ज़िक्र करने के बाद कि "आस्ट्रिया में जातियों के झगड़ों से राजनीतिक उन्नति रुकी हुई है," और यह कहने के उपरान्त कि "जातियों की समस्या को अन्तिम रूप से हल करना...प्रधानतः एक सांस्कृतिक आवश्यकता है" तथा इसे हल करना "केवल एक सच्चे जनवादी समाज में ही सम्भव हो सकता है, जिसकी रचना सभी के सार्वभौमिक, समान और प्रत्यक्ष मताधिकार के आधार पर की गई हो"—यह सब कह चुकने के बाद, कार्यक्रम आगे कहता है :

"आस्ट्रिया के लोगों की **जातीय विशेषताओं की रक्षा तथा विकास** केवल उसी हालत में सम्भव है कि सबके समान अधिकार स्वीकार किये जायें और हर प्रकार के उत्पीड़न को बन्द कर दिया जाय। अतएव, सबसे पहले, हर प्रकार की नौकरशाहाना

१. दक्षिण-स्लाव सामाजिक-जनवादी पार्टी के प्रतिनिधियों ने भी इस कार्यक्रम के पक्ष में मत दिया था। इसके लिए देखिये, "ब्रून सामाजिक-जनवादी पार्टी कांग्रेस की कार्यवाही", १९०६।

राज्य की केन्द्रीयता को और अलग-अलग प्रान्तों के सामन्ती विशेषाधिकारों को तिलाञ्जलि देना आवश्यक है।

"ऐसी परिस्थितियों में, और केवल ऐसी परिस्थितियों में ही, आस्ट्रिया में जातीय झगड़ों की जगह जातीय शान्ति क़ायम करना सम्भव होगा। यह निम्न सिद्धान्तों के आधार पर किया जा सकेगा :

"१. आस्ट्रिया को जातियों के एक जनवादी संघ राज्य में बदल दिया जाय।

"२. ऐतिहासिक शाही इलाक़ों की जगह जातीय आधार पर बनाये गए स्वायत्त-शासन प्राप्त कार्पोरेशन क़ायम करने चाहिये, जिनमें से प्रत्येक में क़ानून बनाने और शासन-प्रबन्ध चलाने का काम सबके सार्वभौमिक, समान और प्रत्यक्ष मताधिकार के आधार पर चुनी गई जातीय पार्लामेण्टों के हाथों में रहे।

"३. प्रत्येक जाति के विभिन्न स्वायत्त-शासन प्राप्त क्षेत्रों को मिलकर एक संयुक्त जातीय संघ बनाना चाहिये, जो पूर्ण स्वराज्य के आधार पर स्वयं अपने जातीय मामलों का प्रबन्ध करे।

"४. शाही पार्लामेण्ट को एक विशेष क़ानून बनाकर जातीय अल्पसंख्यकों के अधिकारों की गारण्टी देनी चाहिए।"

कार्यक्रम के अन्त में आस्ट्रिया में रहने वाली सभी जातियों से एकता-बद्ध होने की अपील की गई है।

यह समझने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि यद्यपि इस कार्यक्रम में "क्षेत्रीयता" के विचार के कुछ चिह्न बाक़ी हैं, फिर भी, आम तौर पर, उसमें जातीय स्वायत्त-शासन के विचार का ही प्रतिपादन किया गया है। यह बात अकारण नहीं है कि जातीय सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन के प्रथम प्रचारक, स्प्रिंगर ने इस प्रस्ताव का उत्साह के साथ स्वागत किया है।[1] बेयर भी इस प्रस्ताव का समर्थन करता है और इसे जातीय स्वायत्त-शासन के विचार की एक "सैद्धान्तिक विजय" मानता है।[2] प्रस्ताव में और स्पष्टता लाने के लिए ही, वह केवल यह परिवर्तन चाहता है कि चौथे सूत्र की जगह एक और स्पष्ट सूत्र रखा जाय और उसमें "प्रत्येक स्वायत्त-शासन प्राप्त क्षेत्र में रहने वाले जातीय अल्पसंख्यकों का एक सार्वजनिक कार्पोरेशन

१. स्प्रिंगर : "जातियों की समस्या।"
२. बेयर : "जातियों का प्रश्न।"

बनाने" की आवश्यकता पर ज़ोर दिया जाय ताकि ये कार्पोरेशन "शिक्षा एवं आम सांस्कृतिक मामलों का प्रबन्ध कर सकें।"

यह है आस्ट्रिया के सामाजिक-जनवादियों का जातीय कार्यक्रम।

आइये, हम इसके वैज्ञानिक आधार पर विचार करें।

हमें देखना है कि आस्ट्रिया की सामाजिक-जनवादी पार्टी किन तर्कों के आधार पर जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन को उचित ठहराती है।

हमें इसके लिए जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन के सिद्धान्त के पण्डितों—स्प्रिंगर और बेयर—की ओर मुड़ना होगा।

जातीय स्वायत्त-शासन का सिद्धान्त इस धारणा को लेकर चलता है कि जाति व्यक्तियों का एक समुदाय है और उसके लिए किसी विशेष-क्षेत्र का होना आवश्यक नहीं है।

स्प्रिंगर के कथनानुसार :

"जाति का लाज़िमी तौर पर क्षेत्र से कोई सम्बन्ध नहीं है"; जातियाँ "व्यक्तियों की स्वायत्त-शासन प्राप्त यूनियनें होती हैं।"

बेयर ने भी जाति को "व्यक्तियों का समुदाय" माना है और उसकी दृष्टि में इस समुदाय को "किसी विशेष-क्षेत्र में पूर्ण सत्ता" प्राप्त नहीं होती।[1]

परन्तु जिन व्यक्तियों को लेकर जाति बनती है वे सदा एक जगह, एक समुदाय बनाकर नहीं रहते। अकसर वे अनेक समुदायों में बँटे रहते हैं, और इस दशा में विदेशी जातीय तत्त्वों के बीच बिखरे हुए पाये जाते हैं। पूँजीवाद उन्हें जीविका की तलाश में दूसरे क्षेत्रों तथा शहरों में जाने के लिए मजबूर करता है। परन्तु, जब वे दूसरी जातियों के इलाकों में प्रवेश करते हैं और वहाँ अल्पसंख्यकों के रूप में रहना शुरू कर देते हैं तो वहाँ की बहुसंख्यक जातियाँ उनके स्कूलों पर, उनकी भाषा आदि पर तरह-तरह के प्रतिबन्ध लगाकर उन्हें परेशान करने लगती हैं। इससे जातियों में झगड़े होते हैं। इसी से क्षेत्रीय स्वायत्त-शासन "अनुपयुक्त" सिद्ध हो जाता है।

---

१. बेयर : "जातियों का प्रश्न।"

और ऐसी हालत में, स्प्रिंगर और बेयर को सिर्फ़ यही हल नज़र आता है कि किसी जाति के राज्य के विभिन्न भागों में बिखरे हुए अल्पसंख्यक लोगों को एक, संयुक्त, आम, सर्व-वर्गीय जातीय यूनियन में संगठित किया जाय। उनकी राय में, ऐसी यूनियन ही जातीय अल्पसंख्यकों के सांस्कृतिक हितों की रक्षा कर सकती है और जातीय झगड़ों का अन्त कर सकती है।

"इसलिए ज़रूरी है कि जातियों को," स्प्रिंगर के शब्दों में, "संगठित किया जाय, अधिकार दिये जायें और ज़िम्मेदारियाँ दी जायें......।"[1] ज़ाहिर है कि "क़ानून बन तो आसानी से जाता है, पर क्या वह अमल में आ सकेगा?" ..."यदि जातियों के लिए कोई क़ानून बनाना है तो पहले जातियों का निर्माण करना होगा...।"[2] "यदि जातियों का निर्माण नहीं होता तो जातीय अधिकारों को स्थापित करना और जातीय झगड़ों को दूर करना भी असम्भव हो जाता है।"

बेयर ने भी यही भावना प्रकट की थी जब उसने कहा था कि "मज़दूर वर्ग की यह माँग है" कि "अल्संख्यकों को व्यक्तियों के सिद्धान्त के आधार पर सार्वजनिक कार्पोरेशनों में संगठित किया जाय।"[4]

परन्तु किसी जाति का संगठन कैसे किया जायगा? यह कैसे तय होगा कि अमुक व्यक्ति अमुक जाति का सदस्य है?

स्प्रिंगर के कथनानुसार: "जाति सर्टीफ़िकेटों से तय होगी। किसी इलाक़े में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को यह ऐलान करना पड़ेगा कि उस इलाक़े की जातियों में से वह किस का सदस्य है।"[5]

बेयर की राय है कि "व्यक्तियों के आधार के सिद्धान्त का अर्थ यह है कि पूरी आबादी जातियों में बँटी हुई मान ली जायगी...प्रत्येक बालिग़ नागरिक अपनी इच्छानुसार तय करेगा कि वह किस जाति का सदस्य है और इस प्रकार जातियों के रजिस्टर तैयार किये जायेंगे।"[6]

बेयर आगे कहता है:

"एक ही जाति की आबादी वाले ज़िलों के तमाम जर्मनों को और दोहरी आबादी वाले ज़िलों के जातियों के रजिस्टरों में दर्ज तमाम जर्मनों को मिलाकर जर्मन जाति समझा जायगा और वे एक **जातीय काउंसिल** चुनेंगे।"[7]

---

१. "जातियों की समस्या।" २. उपर्युक्त। ३. उपर्युक्त। ४. "जातियों का प्रश्न।"
५. "जातियों की समस्या।" ६. "जातियों का प्रश्न।" ७. "जातियों का प्रश्न।"

चेक, पोल आदि पर भी यही बात लागू होती है।

स्प्रिंगर के मतानुसार : "**जातीय काउंसिल** जाति की सांस्कृतिक पार्लामेण्ट होती है, जिसको जातीय शिक्षा, जातीय साहित्य, कला एवं विज्ञान, अकादमियों, अजायबघरों, कला-प्रदर्शिनियों, नाट्यशालाओं आदि की स्थापना के सिद्धान्त निर्धारित करने तथा उपाय निश्चित करने का अधिकार होगा, अर्थात् वह इन सभी चीज़ों को अपने संरक्षण में ले सकेगी।"

जाति और उसकी केन्द्रीय संस्था का संगठन इसी प्रकार होगा।

बेयर के मतानुसार, आस्ट्रिया की सामाजिक-जनवादी पार्टी इस प्रकार की सर्व-वर्गीय संस्थाएँ बनाकर "जातीय संस्कृति को···समस्त जनता की सम्पत्ति बनाने और इस प्रकार *जाति के समस्त सदस्यों को एक जातीय-सांस्कृतिक समुदाय में ढालने* का प्रयत्न कर रही है।"[2] (शब्दों पर ज़ोर मेरा है—स्तालिन।)

ख़याल हो सकता है कि यह बात केवल आस्ट्रिया के लिए सत्य है। परन्तु, बेयर साहब इससे सहमत नहीं। उनकी पुख़्ता राय है कि आस्ट्रिया की भाँति जिन राज्यों में भी कई जातियाँ रहती हैं, उन सभी के लिए जातीय स्वायत्त-शासन आवश्यक है।

बेयर की राय में :

"बहुजातीय राज्य में, सभी जातियों का मज़दूर वर्ग सम्पत्तिशाली वर्गों की जातीय नीति के मुक़ाबिले में जातीय स्वायत्त-शासन की माँग पेश करता है।"[3]

और इसके बाद, धीरे से जातियों के आत्म-निर्णय के स्थान में जातियों का स्वायत्त-शासन रखकर बेयर कहता है :

"इस प्रकार, एक बहुजातीय राज्य में, जातीय स्वायत्त-शासन या जातियों का आत्म-निर्णय, आवश्यक रूप से सभी जातियों के मज़दूर वर्ग का वैधानिक कार्यक्रम बन जायगा।"

और वह इसके भी आगे जाता है। उसका विश्वास है कि उसके तथा स्प्रिंगर के द्वारा गढ़ी हुई ये सर्व-वर्गीय "जातीय यूनियनें" एक प्रकार से भावी समाजवादी समाज के नमूनों का काम करेंगी। कारण कि "समाजवादी

---

१. "जातियों की समस्या।" २. "जातियों का प्रश्न।" ३. "जातियों का प्रश्न।"

समाज-व्यवस्था···मानवता को जातियों के आधार पर समुदायों में बाँट देगी,"[1] समाजवाद के अन्तर्गत "मानवता स्वायत्त-शासन प्राप्त जातीय समुदायों में बँट जायगी,"[2] और इस प्रकार "समाजवादी समाज में निस्सन्देह हमें व्यक्तियों तथा क्षेत्रीय कार्पोरेशनों की जातीय यूनियनों का रंग-बिरंगा चित्र मिलेगा";[3] और इसीलिए "जातीयता का समाजवादी सिद्धान्त जातीयता के सिद्धान्त तथा जातीय स्वायत्त-शासन का सर्वश्रेष्ठ समन्वय है।"[4]

अब शायद बात काफ़ी साफ़ हो गई है···

ब्रेयर तथा स्प्रिंगर की रचनाओं में जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन के समर्थन में ये ही तर्क दिये गए हैं।

इनमें पहली बात, जिस पर बरबस ध्यान जाता है, यह है कि जातियों के आत्म-निर्णय के स्थान में बिना किसी कारण के और बिना तनिक भी औचित्य के जातीय स्वायत्त-शासन रख दिया गया है। दो में से एक ही बात सत्य हो सकती है। या तो ब्रेयर साहब आत्म-निर्णय का अर्थ नहीं समझे, या समझ कर भी उन्होंने उसके अर्थ को किसी कारणवश जान-बूझकर संकुचित और सीमित कर दिया। क्योंकि इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि (क) जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन का सिद्धान्त बहुजातीय राज्य की एकता को स्थायी मानकर चलता है, जब कि आत्म-निर्णय का सिद्धान्त इस एकता का उल्लंघन करता है; और (ख) आत्म-निर्णय का सिद्धान्त प्रत्येक जाति को पूर्ण सत्ता प्रदान करता है, जब कि जातीय स्वायत्त-शासन का सिद्धान्त उसे केवल "सांस्कृतिक" अधिकार देता है। यह हुई पहली बात।

दूसरी बात यह है कि भविष्य में किसी भी समय ऐसी अन्दरूनी और बाहरी परिस्थितियों का पैदा हो जाना पूर्णतया सम्भव है जिनसे आस्ट्रिया जैसे किसी बहु-जातीय राज्य से कोई जाति अलग हो जाने का निर्णय कर डाले।—ब्रून पार्टी कांग्रेस में ही क्या रूथेनिया के सामाजिक-जनवादियों ने यह घोषणा नहीं की थी कि वे अपनी क़ौम के "दो हिस्सों" को एक इकाई

१. "जातियों का प्रश्न।" २. उपर्युक्त। ३. उपर्युक्त। ४. उपर्युक्त।

में जोड़ने के लिए तैयार हैं ?[1] ऐसी परिस्थिति में उस जातीय स्वायत्त-शासन का क्या होगा जिसे मानना *"सभी जातियों के मज़दूर वर्ग के लिए अवश्यम्भावी है"* ? समस्या का यह कैसा "हल" है जो जातियों को जबर्दस्ती एक राज्य में बाँध कर रखना चाहता है ?

और भी। जातीय स्वायत्त-शासन का सिद्धान्त जातियों के पूरे विकास-क्रम के ख़िलाफ़ जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, जातियों का संगठन करना होगा; पर जब वास्तविक जीवन में, आर्थिक विकास, जातियों के बड़े-बड़े टुकड़ों को उनसे काटकर अलग फेंक देता हो और विभिन्न इलाक़ों में बिखेर देता हो, तब क्या उन्हें जबर्दस्ती एक में जोड़ा जा सकता है ? इसमें कोई सन्देह नहीं कि पूँजीवाद की प्रारम्भिक अवस्था में एक-एक जाति के लोग आपस में जुड़ते हैं। पर साथ ही, इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि पूँजीवाद की बाद की अवस्था में जातियों का बिखरना शुरू हो जाता है और एक-एक जाति के बड़े-बड़े टुकड़े उससे अलग होकर जीविका की तलाश में चल देते हैं और फिर स्थाई रूप से राज्य के दूसरे इलाक़ों में जाकर बस जाते हैं। और इस क्रिया के दौरान में ये प्रवासी लोग अपने पुराने रिश्ते-नाते भूल जाते हैं, अपने नये निवास-क्षेत्र में नये रिश्ते जोड़ लेते हैं और पीढ़ी दर पीढ़ी नई आदतें और नई रुचि, और सम्भवतः एक नई भाषा भी अंगीकार करते जाते हैं। प्रश्न उठता है कि जो समुदाय एक-दूसरे से इतने अलग और भिन्न हो गये हैं, क्या उन्हें एक जातीय यूनियन में शामिल किया जा सकता है ? जो नहीं जुड़ सकता उसे जोड़ने को जादू की डोरी कहाँ से आएगी ? क्या इसकी कल्पना भी की जा सकती है कि बाल्टिक प्रान्तों के जर्मनों और ट्रांसकाकेशिया के जर्मनों को "एक जाति में जोड़ा" जा सकता है ? और यदि इसकी कल्पना नहीं की जा सकती और ऐसा करना सम्भव नहीं है, तो फिर जातीय स्वायत्त-शासन के सिद्धान्त में और उन पुराने राष्ट्रवादियों के थोथे स्वप्नों में क्या अन्तर रह जाता है जो इतिहास के चक्र को पीछे घुमाना चाहते थे ?

१. देखिये "बूंद सामाजिक-जनवादी पार्टी कांग्रेस की कार्यवाही।"

किन्तु, लोगों के देश छोड़कर चले जाने से ही जाति की एकता कम नहीं होती। वह अन्दरूनी कारणों से, वर्ग-संघर्ष की बढ़ती हुई तीव्रता से भी, कम होती है। पूँजीवाद की प्रारम्भिक अवस्था में मजदूर वर्ग और पूँजीपति-वर्ग की एक "समान संस्कृति" की बात की जा सकती थी। परन्तु, जैसे-जैसे बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धे बढ़ते जाते हैं और वर्ग संघर्ष अधिकाधिक उग्र होता जाता है, वैसे-वैसे यह "समान संस्कृति" गायब होती जाती है। जब किसी जाति का प्रभु-वर्ग और मजदूर एक-दूसरे की बात तक न समझ पायें तब कोई कैसे उस जाति की "समान संस्कृति" को बात कर सकता है? जब पूँजीपति-वर्ग युद्ध छेड़ने पर उतारू है और मजदूर वर्ग "युद्ध के विरुद्ध युद्ध" की घोषणा कर चुका है तब दोनों का "समान भविष्य" क्या हो सकता है? ऐसे परस्पर विरोधी, एक-दूसरे के उल्टे तत्वों को लेकर क्या एक संयुक्त सर्व-वर्गीय जातीय यूनियन बनाई जा सकती है? और, इसके बाद भी क्या कोई "एक जाति के समस्त सदस्यों को एक जातीय-सांस्कृतिक समुदाय में जोड़ने" की बात कर सकता है?[1] क्या यह स्पष्ट नहीं है जातीय स्वायत्त शासन का सिद्धान्त वर्ग-संघर्ष के पूरे क्रम के खिलाफ़ जाता है?

पर एक क्षण के लिए यह भी मान लीजिए कि "जाति का संगठन करो" के नारे पर अमल किया जा सकता है। अब यह बात तो समझ में आती है कि पूँजीवादी-राष्ट्रवादी पार्लामेन्टी नेतागण अतिरिक्त वोट पाने के उद्देश्य से किसी जाति का "संगठन" करने की कोशिश करें। पर, सामाजिक-जनवादी कब से जातियों के "संगठन", जातियों के "निर्माण" और जातियों के "सृजन" का काम करने लगे हैं?

ये कैसे सामाजिक-जनवादी हैं जो वर्ग-संघर्ष के अत्यधिक उग्र रूप धारण करने के युग में सर्व-वर्गीय जातीय यूनियनों का संगठन करते हैं! अभी तक दूसरी समाजिक-जनवादी पार्टियों की तरह, आस्ट्रिया की पार्टी के भी सामने एक ही काम था; और वह था मजदूर वर्ग के संगठन का काम।

१. बेयर : "जातियों का प्रश्न।"

पर अब शायद यह काम "पुराना" पड़ गया है। और स्प्रिंगर और बेयर एक "नया" काम, अधिक प्रेरणादायक काम हमें बता रहे हैं; और वह है जातियों का "संगठन" करने, जातियों का "सृजन" करने का काम।

परन्तु, तर्क के भी कुछ नियम होते हैं। जो आदमी जातीय स्वायत्त-शासन के सिद्धान्त को अंगीकार करता है, उसे इस "नये" काम को भी अंगीकार करना पड़ेगा; और इस "नये काम" को मानने का मतलब है वर्ग-दृष्टिकोण को छोड़ देना तथा जातीयतावाद के मार्ग को अपना लेना।

स्प्रिंगर और बेयर का जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन का सिद्धान्त, असल में, जातीयतावाद का ही एक चतुराई भरा रूप है।

और, यह बात आकस्मिक नहीं है कि आस्ट्रिया के सामाजिक-जनवादियों का जातीय कार्यक्रम "लोगों की जातीय विशेषताओं की *रक्षा* तथा *विकास*" करना चाहता है। जरा सोचिये : ट्रांसकाकेशिया के तातारों की ऐसी "जातीय विशेषताओं" की भी हमें "रक्षा करनी पड़ेगी" जैसी *शख्सी-वख्सी* के त्यौहार पर अपने हाथों अपने को जख्मी करने की उनकी प्रथा है! और, जार्जिया के लोगों की ऐसी "जातीय विशेषताओं" का हमें "विकास करना" होगा जैसी उनकी बदला लेने की प्रथा है!

एक पूर्णतया पूँजीवादी-जातीयतावादी कार्यक्रम में ऐसी कोई मांग नजर आती तो कोई आश्चर्य न था। पर, यदि आस्ट्रिया के सामाजिक-जनवादियों के कार्यक्रम में यह माँग नजर आती है तो इसका यही कारण है कि जातीय स्वायत्त-शासन का सिद्धान्त ऐसी मांगों को काटता नहीं बल्कि आश्रय देता है।

और, यदि जातीय स्वायत्त-शासन का सिद्धान्त आज अनुपयुक्त है तो भविष्य में, समाजवादी समाज में, वह और भी अनुपयुक्त सिद्ध होगा।

वर्तमान मानव-समाज का पूरा विकास-क्रम बेयर की इस भविष्यवाणी का खण्डन करता है कि "मानवता जातियों के आधार पर समुदायों में बँट जायगी।"[1] आज जातीय भेदों की दीवारें मजबूत नहीं हो रही हैं, बल्कि

१. देखिये इस अध्याय के आरम्भ में।

गिरती और ध्वस्त होती जा रही हैं। उन्नीसवीं सदी के पाँचवें दशक में ही मार्क्स ने कहा था कि "लोगों के बीच जातीय भेद और विरोध दिन-प्रति-दिन मिटते जा रहे हैं" और "यदि मजदूर वर्ग की सत्ता क़ायम हो गई तो वे और भी जल्दी मिटने लगेंगे।"* उसके बाद से आज तक मानवता का जो विकास हुआ है, पूँजीवादी उत्पादन की प्रचण्ड प्रगति के साथ-साथ जातियाँ जिस तरह फेंटी गई हैं और अधिकाधिक बड़े इलाक़ों में लोगों का जिस तरह सम्मिश्रण हुआ है, उससे मार्क्स के विचार की जोरदार पुष्टि होती है।

बेयर की समाजवादी समाज को "व्यक्तियों तथा क्षेत्रीय कार्पोरेशनों की जातीय यूनियनों के रंग-बिरंगे चित्र" के रूप में देखने की कोशिश, वास्तव में, समाजवाद की मार्क्स की धारणा के स्थान पर डरते-डरते बाकुनिन की धारणा के एक संशोधित संस्करण को रख देने की कोशिश है। समाजवाद का इतिहास साक्षी है कि ऐसी हर कोशिश में अवश्यम्भावी असफलता के तत्व मौजूद रहते हैं।

बेयर साहब ने "जातीयता" के जिस "समाजवादी सिद्धान्त" की प्रशंसा के पुल बाँधे हैं, हम उसकी यहाँ अधिक चर्चा नहीं करेंगे, क्योंकि हमारी राय में यह सिद्धान्त *वर्ग-संघर्ष* के समाजवादी सिद्धान्त की जगह *"जातीयता"* के पूँजीवादी *"सिद्धान्त"* की स्थापना करता है। यदि जातीय स्वायत्त-शासन का विचार ऐसे संदिग्ध सिद्धान्त के आधार पर क़ायम है तो मानना पड़ेगा कि उससे मजदूर-आन्दोलन का केवल नुक़सान ही हो सकता है।

सच है कि यह जातीयता (या राष्ट्रवाद) स्पष्ट रूप में हमारे सामने नहीं आती, क्योंकि बड़ी चतुराई से उस पर समाजवादी शब्दावली का आवरण डाल दिया जाता है। पर, इसीलिए तो वह मजदूर वर्ग के लिए और भी ख़तरनाक हो जाती है। खुली और नग्न जातीयता का सदा सफ-लतापूर्वक मुक़ाबिला किया जा सकता है क्योंकि उसे पहचानने में कोई कठि-नाई नहीं होती। परन्तु, जब जातीयता अपने चेहरे पर नक़ाब डालकर सामने आती है तब उसे पहचानना और पहचान कर उससे लड़ना कठिन हो

जाता है। समाजवाद का कवच ओढ़ने के बाद जातीयता अधिक बलवान हो जाती है और उस पर चोट करना मुश्किल हो जाता है। मजदूरों के बीच घुसकर जातीयता वातावरण में विष घोलती है और. विभिन्न जातियों के मजदूरों के बीच आपसी अविश्वास और संकीर्णता के जहरीले विचारों का प्रचार करती है।

किन्तु, जातीयता से होने वाला नुक़सान इसी पर ख़तम नहीं हो जाता। वह न केवल जातियों को एक-दूसरे से अलग करने के लिए जमीन तैयार करती है, बल्कि संयुक्त मजदूर आन्दोलन में भी फूट डालती है। जातीय स्वायत्त-शासन का विचार वह मानसिक वातावरण तैयार करता है जिसमें संयुक्त मजदूर पार्टी अलग-अलग जातियों की अलग-अलग पार्टियों में बँटने लगती है। पार्टी के टूटने के बाद मजदूर यूनियनें टूटती हैं और मजदूरों के बीच दीवारें खड़ी हो जाती हैं। इस प्रकार संयुक्त वर्ग-आन्दोलन अलग-अलग बहने वाली छोटी-छोटी जातीय धाराओं में बिखर जाता है।

"जातीय स्वायत्त-शासन" के घर, आस्ट्रिया में इस चीज़ के अनेक दुखद उदाहरण मिलते हैं। एक जमाने की संयुक्त आस्ट्रियन सामाजिक-जनवादी पार्टी १८९७ (विम्बर्ग पार्टी कांग्रेस)* के बाद से छोटी-छोटी पार्टियों में बँटती जा रही है। ब्रून कांग्रेस (१८९९) के बाद, जिसने जातीय स्वायत्त-शासन का सिद्धान्त स्वीकार किया था, यह बिखराव और भी बढ़ गया। और, अब हालत यहाँ तक पहुँच गई है कि एक संयुक्त अन्तरजातीय पार्टी के स्थान में छः जातीय पार्टियाँ बन गई हैं, जिनमें से एक, यानी चेक समाजिक-जनवादी पार्टी ऐसी है जो जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी से तनिक भी सम्बन्ध नहीं रखना चाहती।

मगर पार्टियों से मजदूर यूनियनें सम्बन्धित होती हैं। आस्ट्रिया में, पार्टियों और मजदूर यूनियनों में सारा काम मुख्यतः वे ही सामाजिक-जनवादी मजदूर करते हैं। इसलिए, इस बात का बड़ा डर था कि पार्टी के अन्दर फैला हुआ अलगाव और टूट-फूट मजदूर यूनियनों में भी घर कर जायेगी और मजदूर यूनियनें भी टूट जायेंगी। हुआ भी यही। मजदूर यूनियनें भी

जातीयता के आधार पर बँट गईं। अब हालत इतनी खराब हो गई है कि कभी-कभी चेक मजदूर, जर्मन मजदूरों की हड़ताल तोड़ने में भी नहीं हिच-किचाते और म्युनिसिपल चुनावों में जर्मन मजदूरों के खिलाफ़ चेक पूँजी-पतियों का साथ देने को तैयार हो जाते हैं।

इससे यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन जातीय समस्या का कोई हल नहीं है। नहीं, बल्कि सच तो यह है कि वह समस्या को और भी उग्र बना देता है तथा और भी उलझा देता है, क्योंकि वह एक ऐसी जमीन तैयार कर देता है जिसमें मजदूर आन्दोलन की एकता नष्ट हो जाती है, वह जातियों के आधार पर मजदूरों में फूट डाल देता है और उनके आपसी झगड़ों को बढ़ा देता है।

जातीय स्वायत्त-शासन के विष-वृक्ष से ऐसे ही फल उगते हैं।

५

बुन्द, उसका जातीयतावाद और अलगाववाद

हमने ऊपर बताया था कि चेक, पोल आदि लोगों के लिये तो बेयर स्वायत्त-शासन की आवश्यकता मानने को तैयार है, पर यहूदियों को वह यह अधिकार देने का विरोधी है। इस प्रश्न के जवाब में कि "क्या मजदूर वर्ग को यहूदी लोगों के लिये स्वायत्त-शासन की मांग करनी चाहिये ?" बेयर ने लिखा है कि "यहूदी मजदूर जातीय स्वायत्त-शासन की मांग नहीं कर सकते।"[१] बेयर के मतानुसार, इसका कारण यह है कि "पूँजीवादी समाज उनके लिये (यहूदियों के लिये—स्तालिन) एक जाति के रूप में क़ायम रहना असम्भव बना देता है।"[२]

संक्षेप में, तर्क यह है कि यहूदी जाति समाप्त हो रही है और इसलिये उसके वास्ते जातीय स्वायत्त-शासन की मांग करने वाला कोई भी नहीं है। यहूदी दूसरी जातियों में घुले-मिले जा रहे हैं।

एक जाति के रूप में यहूदियों के भाग्य के बारे में यह कोई नई धारणा नहीं है। मार्क्स ने यही बात उन्नीसवीं सदी के पाँचवे दशक में, विशेषकर जर्मन यहूदियों के बारे में, कही थी।[३] कॉट्स्की ने १९०३ में इसी बात को रूसी यहूदियों के बारे में दुहराया था।[४] और, अब बेयर आस्ट्रिया के

१. "जातियों का प्रश्न।" २. उपर्युक्त। ३. मार्क्स का लेख : "यहूदियों का सवाल", १८४४। ४. "किशीनेव का हत्याकाण्ड और यहूदियों का सवाल", १९०३।

यहूदियों को लेकर वही बात कह रहा है; पर अन्तर यह है कि वह यहूदी जाति के वर्तमान से नहीं, बल्कि भविष्य से इनकार करता है।

एक जाति के रूप में यहूदियों का जीवित रहना क्यों असम्भव है, इसका बेयर ने यह कारण बताया है कि "यहूदियों के पास बसने के लिये कोई सुरक्षित इलाक़ा नहीं है।"[१] यह बात आम तौर पर तो सही है, पर इससे पूरी सचाई प्रकट नहीं होती। सचाई, असल में, यह है कि यहूदियों में कोई ऐसा बड़ा तबक़ा नहीं है जो स्थायी रूप से भूमि से सम्बन्धित हो और जो स्वाभाविक रूप से पूरी जाति को एक किये रहे, और न केवल उसके ढाँचे का काम करे बल्कि एक "जातीय" बाजार का भी काम दे। रूस के पचास-साठ लाख यहूदियों में से तीन या चार प्रतिशत का ही खेती से किसी तरह का सम्बन्ध है। बाक़ी ९६ प्रतिशत व्यापार में, उद्योग-धन्धों में, शहरी संस्थाओं में लगे हुए हैं और, आम तौर पर, शहरों में ही रहते हैं। इसके अलावा, वे सारे रूस में फैले हुए हैं और किसी भी जिले में उनका बहुमत नहीं है।

इस प्रकार, दूसरी जातियों के इलाक़ों में अल्पसंख्यकों के रूप में बिखरे हुए यहूदी लोग, आम तौर पर, कारखानेदारों और व्यापारियों तथा डाक्टरों, शिक्षकों आदि के रूप में "विदेशी" जातियों के काम आते हैं और स्वभावतः इन "विदेशी जातियों" की भाषा आदि को भी अपना लेते हैं। इस सब से, और साथ ही जातियों के अधिकाधिक घुलने-मिलने के परिणाम-स्वरूप, जो पूँजीवाद की अधिक विकसित अवस्था की विशेषता है, यहूदी दूसरी जातियों में मिलते जाते हैं। पेल (जारशाही रूस में सिर्फ़ यहूदियों की बस्तियाँ—अ०) हटा देने से उनके दूसरी जातियों से घुलने-मिलने की प्रक्रिया और भी तेज हो जायेगी।

अतः, रूसी यहूदियों के जातीय स्वायत्त-शासन का सवाल एक अजीब सी शक्ल अख़्तियार कर लेता है: एक ऐसी जाति को स्वायत्त-शासन देने

१. "जातियों का प्रश्न।"

की बात कही जा रही है जिसके भविष्य से लोग इनकार करते हैं और जिसके अस्तित्व को भी अभी सिद्ध करना बाक़ी है !

फिर भी, बुन्द ने यही रुख अपनाया, जब कि अपनी छठी कांग्रेस (१६०५) में उसने जातीय स्वायत्त-शासन पर आधारित एक "जातीय कार्यक्रम" स्वीकार किया था।

बुन्द ने दो कारणों से यह क़दम उठाया था।

पहला कारण यह है कि बुन्द केवल यहूदी सामाजिक-जनवादी मजदूरों के ही संगठन के रूप में क़ायम है। १८६७ के पहले भी, यहूदी मजदूरों के बीच काम करने वाले सामाजिक-जनवादी दलों ने "यहूदी मजदूरों का एक विशेष संगठन"[1] क़ायम करने का उद्देश्य अपने सामने रखा था। १८६७ में, उन्होंने एक होकर बुन्द बनाया और ऐसे संगठन की नींव डाल दी। यह वह काल था जब रूसी सामाजिक-जनवाद एक संयुक्त संस्था के रूप में नहीं जम पाया था। बुन्द बराबर बढ़ती और फैलती गई, और रूसी सामाजिक-जनवाद के अंधेरे युग की पृष्ठभूमि में अधिकाधिक महत्त्व धारण करती गई।........फिर, २०वीं सदी शुरू हुई। मजदूरों के *जन-आन्दोलन* का जन्म हुआ। पोलैण्ड में सामाजिक-जनवाद ने उन्नति की और यहूदी मजदूरों को जन-संघर्षों में खींचा। रूसी सामाजिक-जनवाद ने उन्नति की और "बुन्द" के कार्यकर्ताओं को अपनी ओर आकर्षित किया। एक क्षेत्रीय आधार के अभाव में, बुन्द का जातीय ढाँचा बहुत संकुचित प्रतीत होने लगा। बुन्द के सामने समस्या पैदा हुई कि या तो आम अन्तरजातीय धारा में सम्मिलित हो जाय या क्षेत्रीय सीमाओं को न मानने वाले संगठन के रूप में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व क़ायम रखे। बुन्द ने दूसरा मार्ग चुना।

इस प्रकार, इस "स्थापना" का जन्म हुआ कि बुन्द "यहूदी मजदूर वर्ग की एकमात्र प्रतिनिधि है।"

परन्तु, इस विचित्र "स्थापना" को किसी "सरल" ढंग से सिद्ध करना

१. देखिये, "जातीय आन्दोलन के रूप।"

असम्भव था। इस "स्थापना" के लिये एक "सैद्धान्तिक" अस्तर की जरूरत थी, उसे "सैद्धान्तिक" रूप से सिद्ध करना आवश्यक था। जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन के सिद्धान्त ने अस्तर का काम किया। बुन्द वालों ने लपक कर आस्ट्रिया के सामाजिक-जनवादियों से इस सिद्धान्त को मांग लिया। यदि आस्ट्रिया वालों के पास यह सिद्धान्त न होता तो बुन्द वालों को अपने स्वतन्त्र अस्तित्व का "सैद्धान्तिक" औचित्य सिद्ध करने के लिये उसका आविष्कार करना पड़ता।

इस प्रकार, १६०१ (चौथी कांग्रेस) में मामूली सी कोशिश करने के बाद, बुन्द ने अन्त में १६०५ (छटी कांग्रेस) में एक "जातीय कार्यक्रम" स्वीकार कर लिया।

दूसरा कारण यह है कि यहूदी ऐसे इलाकों में जातीय अल्पसंख्यकों के रूप में रहते हैं जिनमें दूसरी जातियों का प्रबल बहुमत है। इससे यहूदियों की एक अजीब सी स्थिति हो जाती है। हम ऊपर बता चुके हैं कि इस स्थिति के कारण यहूदियों का एक जाति के रूप में अस्तित्व नष्ट होता जाता है और वे अन्य जातियों में मिलते जाते हैं। परन्तु, यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो वास्तव जगत् में हो रही है। यहूदियों के दिमाग़ों पर, इस प्रक्रिया का उल्टा असर होता है और वे एक अल्पसंख्यक जाति के रूप में अपने अधिकारों की रक्षा किये जाने की गारंटी की मांग करने लगते हैं ताकि वे अन्य जातियों में न मिलने पायें। बुन्द क्योंकि यहूदी जाति के "पौरुष" के बड़े गीत गाती है, इसलिये उसे, लाजिमी तौर पर, इस "गारंटी" का समर्थन करना पड़ा। और, एक बार यह करने के बाद फिर उसे जातीय स्वायत्त-शासन की मांग को भी मानना पड़ा। कारण कि यदि बुन्द किसी प्रकार के स्वायत्त-शासन को पकड़ सकती थी तो वह केवल जातीय, अर्थात्, *जातीय-सांस्कृतिक* स्वायत्त-शासन ही हो सकता था। यहूदियों के लिये क्षेत्रीय-राजनीतिक स्वायत्त-शासन का कोई सवाल नहीं उठ सकता था क्योंकि वे कहीं भी किसी भी निश्चित और मिले हुए इलाके में नहीं रहते।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि बुन्द ने शुरू से ही जातीय अल्प-संख्यकों के अधिकारों की, और जातियों के "स्वतन्त्र विकास" की गारण्टी के रूप में जातीय स्वायत्त-शासन पर जोर दिया। यह अकारण नहीं था कि रूसी सामाजिक-जनवादी पार्टी की दूसरी कांग्रेस में बुन्द के प्रतिनिधि, गोल्डब्लाट्ट ने जातीय स्वायत्त-शासन की परिभाषा करते हुए कहा था कि इसका मतलब ऐसी संस्थाओं से है "जो उनके (जातियों के—स्तालिन) पूर्ण विकास की *गारण्टी* दे सकें।"[1] चौथी द्यूमा के सामाजिक-जनवादी दल के सामने भी बुन्द के विचारों के समर्थकों ने ऐसा ही एक प्रस्ताव रखा था।........

इस प्रकार, बुन्द ने यहूदियों के लिए जातीय स्वायत्त-शासन की विचित्र मांग को अपना लिया।

ऊपर हम जातीय स्वायत्त-शासन पर आम तौर से विचार कर चुके हैं। उससे प्रकट हुआ था कि जातीय स्वायत्त-शासन का परिणाम जातीयतावाद होता है। आगे हम देखेंगे कि बुन्द का भी यही परिणाम हुआ है। परन्तु, बुन्द का जातीय स्वायत्त-शासन के बारे में अपना एक विशेष दृष्टिकोण भी है। वह यह कि बुन्द जातीय अल्पसंख्यकों के अधिकारों की *गारण्टी* के रूप में जातीय स्वायत्त-शासन चाहती है। अतः, प्रश्न पर थोड़ा इस दृष्टिकोण से भी विचार कर लेना आवश्यक है। यह इसलिए और भी जरूरी है कि जातीय अल्पसंख्यकों की समस्या—और केवल यहूदी अल्पसंख्यकों की ही नहीं—सामाजिक-जनवाद के लिए गम्भीर महत्त्व रखती है।

और इसलिए, सवाल उन *"संस्थाओं"* का है जो जातियों को "सांस्कृतिक विकास की पूर्ण स्वतन्त्रता" की *"गारण्टी"* दे सकें। (शब्दों पर जोर मेरा है—स्तालिन।)

परन्तु, ये कौनसी "संस्थाएँ" हैं जो ऐसी "गारण्टी" इत्यादि दे सकती हैं?

---

१. "दूसरी कांग्रेस की कार्यवाही।"

प्रधानतः वे स्प्रिगर और बेयर की "जातीय काउंसिलें" ही हैं, जिन्हें सांस्कृतिक मामलों से सम्बन्धित धारा-सभाएँ समझा जा सकता है।

किन्तु, क्या इन संस्थाओं से जातियों को "सांस्कृतिक विकास की पूर्ण स्वतन्त्रता" की गारण्टी मिल जायगी? क्या सांस्कृतिक मामलों पर विचार करने वाली धारा-सभा किसी जाति को जातीयतावादी अत्याचार से बचा सकती है?

बुन्द का विश्वास है कि वह बचा सकती है।

परन्तु, इतिहास ठीक इसकी उल्टी बात कहता है।

एक जमाने में रूसी पोलैण्ड में एक धारा-सभा क़ायम थी। वह एक राजनीतिक धारा-सभा थी और, जाहिर है, पोल लोगों को "सांस्कृतिक विकास" की स्वतन्त्रता की गारण्टी देने की भी कोशिश किया करती थी। परन्तु, उसे इस काम में सफलता नहीं मिली। उल्टे, रूस में उन दिनों आम तौर पर पाई जाने वाली राजनीतिक परिस्थितियों के खिलाफ़ लड़ते-लड़ते वह खुद एक असमान संघर्ष की शिकार हो गई।

फ़िनलैण्ड में बहुत दिनों से एक धारा-सभा क़ायम है और वह भी फ़िन जाति को हमलों से बचाने की कोशिश करती है, परन्तु अभी तक वह इस उद्देश्य में कितनी सफल हो सकी है, यह हर आदमी देख सकता है।

जाहिर है, धारा-सभाएँ भी अनेक प्रकार की होती हैं और फ़िनलैण्ड को जनवादी ढंग से संगठित धारा-सभा से उतनी आसानी से नहीं निपटा जा सकता जितनी आसानी से अभिजातवर्गीय पोल धारा-सभा से निपटा जा सकता था। परन्तु *निर्णायक* बात धारा-सभा नहीं, बल्कि रूस में क़ायम शासन का आम स्वरूप है। यदि, आज भी रूस में पहले की ही भाँति जब कि पोल धारा-सभा भंग की गई थी, एक घोर एशियाई सामाजिक एवं राजनीतिक शासन क़ायम होता तो फ़िन धारा-सभा को आज से कहीं अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता। इसके अलावा, फ़िनलैण्ड के ऊपर "हमलों और छीना-झपटी" की नीति जोर पकड़ती जा रही है और यह नहीं कहा जा सकता कि वह परास्त हो चुकी है।........

यदि राजनीतिक धारा-सभाओं जैसी पुरानी और ऐतिहासिक दृष्टि से विकसित संस्थाओं का यह हाल है तो नवजात धारा-सभाओं से, और विशेषकर, "सांस्कृतिक" धारा-सभाओं जैसी निर्बल संस्थाओं से तो यह आशा और भी कम की जा सकती है कि वे जातियों के स्वतन्त्र विकास की गारण्टी कर सकेंगी।

स्पष्ट है कि असली महत्त्व "संस्थाओं" का नहीं, बल्कि देश में क़ायम शासन के आम स्वरूप का है। यदि देश में जनवाद नहीं है तो जातियों के "सांस्कृतिक विकास की पूर्ण स्वतन्त्रता" की भी कोई गारण्टी नहीं हो सकती। विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि कोई देश जितना ही जनवादी होगा, "जातियों की स्वतन्त्रता" पर उसमें उतने ही कम "हमले" होंगे और ऐसे "हमलों" के ख़िलाफ़ उतनी ही अधिक गारण्टी होगी।

रूस एक अर्द्ध-एशियाई देश है और इसलिये रूस में "हमलों" की नीति अकसर अत्यन्त विकृत रूप, हत्याकाण्डों का रूप, धारण कर लेती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि रूस में बहुत कम "गारण्टी" पाई जाती है।

जर्मनी योरपीय रंग में रंग चुका है और उसे कमोबेश राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त है। इसलिये, कोई आश्चर्य नहीं कि जर्मनी में "हमलों" की नीति कभी भी हत्याकाण्डों का रूप धारण नहीं करती।

फ्रांस में, ज़ाहिर है, और भी अधिक "गारण्टी" है, क्योंकि फ्रांस जर्मनी से भी अधिक जनवादी है।

स्विट्ज़रलैण्ड का हम यहाँ ज़िक्र नहीं करेंगे, जहाँ बहुत उन्नत जनतंत्र स्थापित है—यद्यपि वह पूँजीवादी जनतंत्र ही है—और इसलिए जहाँ जातियाँ, चाहे वे बहुसंख्यक हों या अल्पसंख्यक, स्वतन्त्रता के साथ रहती हैं।

इस प्रकार, जब बुन्द यह दावा करती है कि स्वयं "संस्थाएँ" ही जातियों के पूर्ण सांस्कृतिक विकास की गारण्टी कर सकती हैं, तो वह एक झूठी बात कहती है।

कहा जा सकता है बुन्द स्वयं भी तो ऐसी "संस्थाओं" के जन्म और स्वतन्त्रता की गारण्टी के लिए रूस में जनतंत्र की स्थापना को *पहली* आवश्यक शर्त मानती होगी। पर, बात ऐसी नहीं है। बुन्द के आठवें सम्मेलन* की रिपोर्ट देखिये तो आप पायेंगे कि बुन्द का खयाल है कि रूस की *वर्तमान व्यवस्था* के *अन्तर्गत* भी वह *यहूदी समुदाय* को "सुधार कर" ऐसी "संस्थाएँ" प्राप्त कर सकती है।

इस सम्मेलन में बुन्द के एक नेता ने कहा था : "हमारा समुदाय भावी जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन का बीज-केन्द्र बन सकता है। जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन जातियों का आत्म-सेवा करने का एक ढंग है, जातीय आवश्यकताओं को पूरा करने का एक तरीका है। समुदाय के रूप में भी कुछ इसी तरह की बात छिपी हुई है। ये दोनों एक ही जंजीर की कड़ियाँ हैं, विकास के एक ही क्रम की अवस्थाएँ हैं।"[1]

इस आधार पर, सम्मेलन ने तै किया कि "यहूदी समुदाय का *सुधार* करने के लिए और *कानून आदि बनाकर* उसे एक ऐसी अ-धार्मिक संस्था में बदलने के लिए" प्रयत्न करना आवश्यक है जिसका संगठन जनवादी ढंग से किया गया हो।[2] (शब्दों पर जोर मेरा है—स्तालिन)

यह स्पष्ट है कि बुन्द के विचार में गारण्टी और आवश्यक शर्त रूस का जनवादीकरण नहीं, बल्कि यहूदियों की कोई भावी "अ-धार्मिक संस्था" है, जो "यहूदियों का सुधार करके" कायम होगी, और यह सुधार कानून आदि बनाकर, यानी धारा-सभा के जरिए होगा।

परन्तु, ऊपर हम देख चुके हैं कि यदि राज्य में शासन, आम तौर पर, जनवादी नहीं है तो "संस्थाओं" से कोई "गारण्टी" नहीं मिल सकती।

लेकिन, सवाल किया जा सकता है कि भावी जनवादी व्यवस्था में क्या हालत होगी। क्या जनतन्त्र में भी ऐसी विशेष "सांस्कृतिक संस्थाओं" की आवश्यकता न होगी जो "पूर्ण विकास" आदि की "गारण्टी" दे सकें? मिसाल के लिए, जनवादी स्विट्ज़रलैण्ड में इस विषय में क्या स्थिति है? क्या स्विट्ज़रलैण्ड में स्प्रिगर की "जातीय काउन्सिलों" के ढंग की कोई विशेष सांस्कृतिक संस्थाएँ हैं? नहीं, ऐसी कोई संस्थाएँ वहाँ *नहीं* हैं।

१. "बुन्द के आठवें सम्मेलन की रिपोर्ट, १९११।" २. उपर्युक्त।

पर क्या इससे, मिसाल के लिए, स्विट्ज़रलैण्ड में अल्पसंख्यकों की तरह रहने वाले इटालियनों के सांस्कृतिक हितों को हानि नहीं पहुँचती? ऐसी कोई बात सुनने में तो नहीं आई है। और, यह बात बिलकुल स्वाभाविक भी है: स्विट्ज़रलैण्ड में जनतन्त्र होने के कारण कथित "गारण्टी" देने वाली विशेष सांस्कृतिक "संस्थाओं" की कोई आवश्यकता नहीं है।

अस्तु, वर्तमान समय में अशक्त और भविष्य में अनावश्यक—ऐसी होती हैं जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन की ये *संस्थाएँ*, और ऐसा होता है जातीय स्वायत्त-शासन।

लेकिन, ये चीज़ें उस वक्त और भी ख़तरनाक रूप धारण कर लेती हैं जब उन्हें एक ऐसी "जाति" पर लादा जाता है जिसके अस्तित्व और भविष्य के बारे में भी सन्देह है। ऐसे उदाहरणों में, जातीय स्वायत्त-शासन के समर्थकों को "जाति" की अच्छी और बुरी, सभी विशेषताओं को पालना-पोसना पड़ता है—और यह सब इसलिए कि वह "जाति" दूसरी जातियों में "न मिल जाय" और उसकी "रक्षा" हो सके।

बुन्द का इस ख़तरनाक मार्ग को अपनाना अवश्यम्भावी था। और, उसने इसी मार्ग को अपनाया। हमारा इशारा "इतवार की पवित्र छुट्टी (सैब्रेथ)" और "यिद्दिश" भाषा के प्रश्नों आदि पर बुन्द के हाल के सम्मेलनों के प्रस्तावों की तरफ़ है।

सामाजिक-जनवाद *सभी जातियों के लिए* मातृभाषा का प्रयोग करने का अधिकार प्राप्त करने के वास्ते लड़ता है। परन्तु, इससे बुन्द को सन्तोष नहीं होता: उसकी माँग है कि "*यहूदी* भाषा के अधिकारों" (शब्द पर ज़ोर मेरा है—स्तालिन) का "विशेष लगन"[1] के साथ समर्थन किया जाय, और चौथी द्यूमा के चुनावों में स्वयं बुन्द ने ऐलान किया था कि वह उन प्रतिनिधियों को तरजीह देगी "जो यहूदी भाषा के अधिकारों की रक्षा करने का वचन देंगे।"[2]

१. "बुन्द के आठवें सम्मेलन की रिपोर्ट।"

२. "बुन्द के नवें सम्मेलन की रिपोर्ट", १९१२।

यहाँ सभी जातियों के अपनी मातृभाषा का प्रयोग करने के *आम* अधिकार की बात नहीं है। चर्चा यहूदी भाषा, यिद्दिश के *विशेष* अधिकारों की है! इसलिए, विभिन्न जातियों के मजदूरों को *मुख्यतः* अपनी-अपनी भाषाओं के लिए लड़ना चाहिए : यहूदी मजदूर यहूदी भाषा के लिए लड़ें, जार्जियन मजदूर जार्जियन भाषा के लिए लड़ें और इसी प्रकार दूसरे मजदूर अपनी-अपनी भाषाओं के लिए जूझें; क्योंकि सभी जातियों के आम अधिकारों की लड़ाई तो एक गौण बात है। सभी दलित जातियों के अपनी मातृभाषा का प्रयोग करने के अधिकार को अगर आप नहीं मानना चाहते तो मत मानिये; लेकिन यदि आप यिद्दिश का अधिकार मानते हैं तो, विश्वास रखिए, बुन्द आपके लिए वोट देगी, आपको "तरजीह" देगी।

पर, तब बुन्द और पूँजीवादी–जातीयतावादियों में क्या अन्तर रह जाता है?

सामाजिक-जनवाद इसके लिए लड़ता है कि सप्ताह में एक दिन सभी मजदूरों को छुट्टी मिले। परन्तु, बुन्द को इससे सन्तोष नहीं होता। वह माँग करती है कि "क़ानून के द्वारा···यहूदी मजदूरों को यह अधिकार मिलना चाहिए कि वे इतवार को अपना सैब्बेथ मना सकें और उन्हें किसी और दिन छुट्टी न मनानी पड़े।"[1]

आशा करनी चाहिए कि बुन्द "एक क़दम और आगे बढ़कर" सभी प्राचीन यहूदी छुट्टियाँ मनाने के अधिकार की माँग करेगी और यदि, बुन्द के दुर्भाग्य से, यहूदी मजदूरों ने धार्मिक अन्धविश्वासों को त्याग दिया है और वे इन त्यौहारों को नहीं मनाना चाहते तो बुन्द "सैब्बेथ मनाने के अधिकार" के अपने आन्दोलन द्वारा उनको सैब्बेथ की याद दिलाएगी और यूँ कहिए कि उनमें "धार्मिक भावना" पैदा करने की चेष्टा करेगी।

इसलिए, कोई आश्चर्य नहीं यदि बुन्द के आठवें सम्मेलन में एकत्रित प्रतिनिधियों ने बड़े-बड़े "जोशीले भाषण"[2] दिये और माँग की कि "यहूदी

१. "बुन्द के आठवें सम्मेलन की रिपोर्ट।"
२. "बुन्द के आठवें सम्मेलन की रिपोर्ट।"

अस्पताल" खोले जायें, और इसके पक्ष में यह तर्क पेश किया कि "हर बीमार अपनी क़ौम के लोगों के बीच ज्यादा आराम महसूस करता है," और यह कि "यहूदी मजदूर को पोल मजदूरों के बीच आराम नहीं मिलेगा, उसे यहूदी दूकानदारों में आराम मिलेगा।"

यहूदियों से सम्बन्ध रखने वाली हर चीज की रक्षा करना, यहूदियों की *सारी की सारी* जातीय विशेषताओं को पालना-पोसना, उन विशेषताओं को भी जो मजदूर वर्ग के लिए प्रत्यक्ष रूप से हानिकारक हैं, हर ग़ैर-यहूदी चीज से यहूदियों को अलग रखना, उनके लिए विशेष अस्पताल खोलने तक की माँग करना—बुन्द अब इस स्तर पर उतर आई है!

साथी प्लेखानोव ने यह अक्षरशः सत्य कहा था कि बुन्द "समाजवाद को जातीयतावाद के रंग में ढाल रही है।" वी० कौस्सोव्स्की और उनके जैसे अन्य बुन्दवादी भले ही प्लेखानोव को "थोथा शब्दजाल बुनने वाला"* कहें—काग़ज बेजान चीज होती है और उस पर कुछ भी लिखा जा सकता है—पर जो लोग बुन्द की कारगुजारियों से भली भाँति परिचित हैं, उन्हें यह देखने में कोई कठिनाई न होगी कि बुन्द के इन शूरवीरों को अपने बारे में सच बोलने में बड़ा डर लगता है और इसलिए वे दूसरों को "बक्की" कह कर गन्दी गालियाँ देते हैं और इस तरह अपनी असलियत छिपाते हैं।........

परन्तु जातियों के प्रश्न पर चूँकि बुन्द का यह मत है, इसलिए स्वभावतः उसे संगठन के मामले में भी यहूदी मजदूरों को अलग करने की मांग उठानी पड़ी। उसने मांग की कि सामाजिक-जनवादी पार्टी के अन्दर जातीय शाखाएँ बनाई जायें। जातीय स्वायत्त-शासन के तर्क का अन्त में यही परिणाम होता है।

और सचमुच, थोड़े दिन के बाद बुन्द मजदूरों के "एकमात्र प्रतिनिधि" के दावे से भी आगे बढ़ गई और मजदूरों के "जातीय विभाजन" के सिद्धान्त की घोषणा करने लगी। अब बुन्द की मांग यह है कि रूसी सामाजिक-जनवादी पार्टी को "अपने संगठनात्मक ढाँचे में जातियों के

आधार पर विभाजन जारी कर देना चाहिए।"[1] और, "विभाजन" से "बढ़ कर" वह "अलगाव" के सिद्धान्त पर पहुँच गई है। यह अकारण नहीं था कि बुन्द के आठवें सम्मेलन में अनेक भाषणकर्ताओं ने ऐलान किया कि "जातीय अस्तित्व अलगाव में निहित है।"[2]

संगठन के मामलों में संघवाद अपने में फूट और अलगाव के बीज लेकर चलता है। बुन्द अलगाव की दिशा में जा रही है। और, सच बात तो यह है कि वह और किसी दिशा में जा ही नहीं सकती। अ-क्षेत्रीय संगठन के रूप में उसका अस्तित्व ही बुन्द को इस दिशा में लिये जा रहा है। बुन्द के पास कोई निश्चित इलाक़ा ऐसा नहीं है जो उसके काम का क्षेत्र माना जाय; वह काम करती है "विदेशी" इलाक़ों में जब कि पड़ोस की पोल, लैट और रूसी सामाजिक-जनवादी पार्टियाँ ऐसी अन्तरजातीय, सामूहिक संगठन हैं जो निश्चित इलाक़ों में काम करती हैं। परिणाम यह कि इन संगठनों का यदि थोड़ा भी विस्तार होता है तो बुन्द का "नुक़सान" होने लगता है और उसके काम के क्षेत्र में कमी आ जाती है। अब, दो ही रास्ते हैं : या तो रूस के सारे के सारे सामाजिक-जनवादी आन्दोलन का ज़ातीय संघवाद के आधार पर फिर से संगठन किया जाय—जिससे बुन्द को यहूदी मजदूर "मिल जायेंगे"; या क्षेत्रीय एवं अन्तरजातीय संगठन का सिद्धान्त माना जाय—और फिर बुन्द का भी पोल और लैट सामाजिक-जनवादी पार्टियों की तरह अन्तरजातीय आधार पर दुबारा संगठन किया जाय।

इसीलिए, बुन्द की मांग हमेशा यह रही है कि "रूसी सामाजिक-जनवादी आन्दोलन का संघीय आधार पर सुधार होना चाहिये।"[3]

१९०६ में, साधारण कार्यकर्ताओं की एकता की भावना के सामने

---

१. "बुन्द के सातवें सम्मेलन पर एक ऐलान।"

२. "बुन्द के आठवें सम्मेलन की रिपोर्ट।"

३. बुन्द द्वारा १९०२ में प्रकाशित: "जातीय स्वायत्त-शासन और संघ आधार पर रूसी सामाजिक-जनवाद का सुधार।"

सिर झुकाते हुए, बुन्द ने एक बीच का रास्ता चुना और रूसी सामाजिक-जनवादी पार्टी में शामिल हो गई। परन्तु, वह शामिल कैसे हुई? पोल और लैट सामाजिक-जनवादी शान्तिपूर्वक साथ मिलकर काम करने के उद्देश्य से रूसी पार्टी में शामिल हुए थे। बुन्द वाले संघ बनवाने के लिए लड़ने का उद्देश्य लेकर शामिल हुए। बुन्द के नेता, मेदेम ने उस वक्त यह बात साफ़-साफ़ कह दी थी:

"हम पार्टी में सुख से रहने के लिये नहीं, बल्कि लड़ने के लिये शरीक हो रहे हैं। सुख से रहने की कोई सम्भावना नहीं है और निकट भविष्य में इसकी केवल मैंनिलोव जैसे लोग ही आशा कर सकते हैं। बुन्द को तो सिर से पैर तक अस्त्र-शस्त्रों से लैस होकर पार्टी में शरीक होना चाहिये।"

इससे यह समझना ग़लत होगा कि मेदेम किसी बुरे उद्देश्य को लेकर चल रहा है। यहाँ बुरे उद्देश्य का सवाल नहीं है। सवाल बुन्द की विचित्र स्थिति का है, जिसके कारण उसे अन्तरजातीय आधार पर संगठित रूसी सामाजिक-जनवादी पार्टी से लड़ना पड़ता है। और, लड़ने में स्वभावतः बुन्द एकता पर चोट करती थी। अन्त में तो हालत यहाँ तक पहुँच गई कि बुन्द ने रस्मी तौर पर भी रूसी सामाजिक-जनवादी पार्टी से सम्बन्ध तोड़ लिया, उसके नियमों को भंग किया और चौथी दूमा के चुनाव में पोल सामाजिक-जनवादियों के खिलाफ़ पोल जातीयतावादियों (राष्ट्रवादियों) का साथ दिया।

बुन्द को शायद लगा कि स्वतन्त्र कार्य की सबसे अच्छी गारण्टी यही है कि एकदम सम्बन्ध तोड़ लिया जाय।

और, इस प्रकार संगठनात्मक "विभाजन" का "सिद्धान्त" अन्त में अलगाववाद और एकदम सम्बन्ध तोड़ लेने तक पहुँच गया।

संघवाद के प्रश्न पर पुराने *इस्क्रा** से बहस करते हुए, बुन्द ने एक बार लिखा था:

"**इस्क्रा** हमें विश्वास दिलाना चाहता है कि बुन्द और रूसी सामाजिक-जनवाद के बीच संघ के ढंग का सम्बन्ध लाज़िमी तौर पर उनकी एकता को कमज़ोर करेगा। हम रूसी अमल का उदाहरण देकर इस मत का खण्डन नहीं कर सकते—इसलिये

कि रूसी सामाजिक-जनवाद संघीय संस्था के रूप में काम ही नहीं करता। परन्तु, हम आस्ट्रिया के सामाजिक-जनवाद के अत्यन्त आशाजनक अनुभव का उदाहरण अवश्य दे सकते हैं। आस्ट्रिया में सामाजिक-जनवादी आन्दोलन ने, १८९७ की पार्टी कांग्रेस के निर्णय के अनुसार, संघीय स्वरूप प्राप्त कर लिया था।"[१]

यह १९०२ में लिखा गया था।

परन्तु, आज हम १९१३ में हैं। और, रूसी "अमल" तथा "आस्ट्रिया के सामाजिक-जनवाद का अनुभव", दोनों हमारे सामने हैं।

उनसे हम क्या सीखते हैं?

पहले "आस्ट्रिया के सामाजिक-जनवाद के अत्यन्त आशाजनक अनुभव" को लीजिये। १८९६ तक आस्ट्रिया में एक संयुक्त सामाजिक-जनवादी पार्टी थी। उस वर्ष लन्दन की अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस में चेक सामाजिक-जनवादियों ने पहली बार अलग प्रतिनिधित्व की मांग की और वह उन्हें मिल भी गया। १८९७ में, वियेना (विम्बर्ग) पार्टी कांग्रेस में संयुक्त पार्टी बाक़ायदा भंग कर दी गई और उसकी जगह छः जातीय "सामाजिक-जनवादी दलों" की एक संघीय लीग क़ायम कर दी गई। बाद में, ये "दल" स्वतन्त्र पार्टियाँ बन गईं। धीरे-धीरे पार्टियों के आपसी सम्बन्ध खतम होते गए। पार्टियों का अनुसरण पार्लामेण्ट में काम करने वाले दलों ने किया। वे भी टूट गए और उनकी जगह जातीय "क्लब" बन गए। फिर, मज़दूर यूनियनों की बारी आई और वे भी जातीय आधार पर बँट गए। यहाँ तक कि सहयोगी समितियाँ भी इस रोग से अछूती न रहीं; चेक अलगाववादियों ने मज़दूरों से उन्हें भी बाँट देने की अपील की। इस बात का हम यहाँ जिक्र नहीं करेंगे कि अलगाववादी प्रचार से मज़दूरों की एकता की भावना कमज़ोर पड़ती है और अकसर उन्हें हड़ताल तोड़ने के रास्ते पर ले जाती है।

इस प्रकार, "आस्ट्रिया के सामाजिक-जनवाद का अत्यन्त आशाजनक अनुभव" बुन्द के मत के *ख़िलाफ़* जाता है और पुराने *इस्क्रा* के मत की

१. "जातीय स्वायत्त-शासन", १९०२, बुन्द द्वारा प्रकाशित।

पुष्टि करता है। आस्ट्रिया की पार्टी में संघवाद ने घोर अलगाववाद को जन्म दिया और मजदूर आन्दोलन की एकता को नष्ट कर डाला है।

हम ऊपर देख चुके हैं कि रूसी "अमल" से भी यही बात साबित होती है। चेक अलगाववादियों की ही भाँति, बुन्द के अलगाववादियों ने रूसी सामाजिक-जनवादी पार्टी से सम्बन्ध तोड़ लिया है। जहाँ तक मजदूर यूनियनों की बात है, बुन्द की मजदूर यूनियनें शुरू से ही जातीय आधार पर संगठित थीं, यानी वे दूसरी जातियों के मजदूरों से हमेशा कटी रहती थीं।

पूर्ण अलगाव और पूरा सम्बन्ध-विच्छेद—संघवाद के रूसी "अमल" से यही तसवीर निकलती है।

कोई आश्चर्य नहीं यदि इस स्थिति से मजदूरों की एकता की भावना और उनका मनोबल कमजोर पड़ते हैं; और यह बात अब बुन्द में भी नजर आ रही है। हमारा इशारा उन झगड़ों की ओर है जो बेकारी के सवाल को लेकर यहूदी और पोल मजदूरों के बीच अधिकाधिक होने लगे हैं। बुन्द के नवें सम्मेलन में, इस विषय पर इस प्रकार के भाषण दिये गए थे:

"पोल मजदूरों को, जो हमारी रोजी छीन रहे हैं, हम हत्यारे और हड़ताल-तोड़क समझते हैं; हम उनकी हड़तालों का समर्थन नहीं करते, हम उन्हें तोड़ते हैं। दूसरे, वे यदि हमारी रोजी छीनते हैं, तो हम इसके जवाब में उनकी रोजी छीनते हैं। वे यहूदी मजदूरों को कारखानों में नहीं घुसने देते तो हम पोल मजदूरों को साँचों के पास नहीं फटकने देते।...... **यदि हम इस मामले को अपने हाथ में नहीं लेंगे तो मजदूर दूसरों के पीछे चलने लगेंगे।**" (शब्दों पर ज़ोर मेरा है—स्तालिन)

बुन्द के सम्मेलनों में एकता की चर्चा इस तरह की जाती है!

"विभाजन" और "अलगाव" के रास्ते पर आप इससे आगे नहीं जा सकते। बुन्द अपने उद्देश्य में सफल हो गई है: भिन्न-भिन्न जातियों के मजदूरों को अलग-अलग करने की उसकी नीति झगड़ों और हड़ताल तोड़ने तक पहुँच गई है। और दूसरा कोई रास्ता भी नहीं है: "यदि हम

---

१. "बुन्द के नवें सम्मेलन की रिपोर्ट।"

इस मामले को अपने हाथ में नहीं लेंगे तो *मज़दूर दूसरों के पीछे चलने लगेंगे।......"*

मज़दूर आन्दोलन में टूट-फूट, सामाजिक-जनवादी कार्यकर्ताओं में पस्ती—बुन्द के संघवाद का यह परिणाम हो रहा है।

इस प्रकार, जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन का विचार, और उससे उत्पन्न होने वाला वातावरण रूस में आस्ट्रिया से भी अधिक खतरनाक सिद्ध हो रहा है।

६

विसर्जनवादियों का सम्मेलन और काकेशस के सामाजिक-जनवादी

ऊपर हमने काकेशस के सामाजिक-जनवादियों के एक भाग के ढुलमुलपन का जिक्र किया था जो कि जातीयतावादी (राष्ट्रवादी) "महामारी" से अपने को नहीं बचा पाये थे। यह ढुलमुलपन इस अजीब सी बात में प्रकट हुआ था कि ये उपरोक्त सामाजिक-जनवादी भी बुन्द के क़दमों पर चलने और जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन का समर्थन करने लगे थे।

पूरे काकेशस के लिए क्षेत्रीय स्वायत्त-शासन और काकेशस में रहने वाली जातियों के लिए जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन—यह है इन सामाजिक-जनवादियों की मांग। यहाँ यह भी बता दिया जाय कि ये लोग रूसी विसर्जनवादियों से भी सम्बन्धित हैं।

सुनिये, उनका माना हुआ नेता एन., जो कम प्रसिद्ध नहीं है, क्या कहता है :

"हर आदमी जानता है कि काकेशस में और केन्द्रीय ज़िलों में बहुत अन्तर है। चाहे इस बात को लीजिए कि वहां किन नस्लों की कितनी आबादी है और चाहे इलाक़े की हालत और खेती के विकास को लीजिए, दोनों में बड़ा भारी फ़र्क़ है। काकेशस जैसे इलाक़े के साधनों का पूरा उपयोग करने के लिए और उसके भौतिक विकास के लिए आवश्यक है कि हमारे पास ऐसे स्थानीय कार्यकर्ता हों, जो स्थानीय विशेषताओं की जानकारी रखते हों और जो स्थानीय जलवायु और संस्कृति के आदी हों। स्थानीय इलाक़े के साधनों का उपयोग करने के लिए जितने क़ानून बनाये

जायें, वे यहीं, इसी इलाक़े में बनाये जाने चाहिए और इसी इलाक़े के कार्यकर्त्ताओं के ज़रिए अमल में आने चाहिए। अतएव, काकेशस में स्वायत्त-शासन की केन्द्रीय संस्थाओं को स्थानीय सवालों के बारे में क़ानून बनाने का अधिकार होना चाहिए······ इसलिए, काकेशस के केन्द्र का यह काम होना चाहिए कि इस इलाक़े के आर्थिक साधनों का पूरा उपयोग करने और इस क्षेत्र को समृद्धिशाली बनाने के लिए क़ानून बनाये।"[1]

दो शब्दों में, काकेशस को जातीय स्वायत्त-शासन मिलना चाहिए।

यदि एन. के उलझे हुए और असंगत तर्कों से हम अपने-आपको मुक्त कर लें तो मानना पड़ेगा कि जिस परिणाम पर वह पहुँचा है, वह सही है। राज्य के आम विधान के अन्तर्गत, जिसकी आवश्यकता से एन. इनकार नहीं करता, काकेशस के लिए क्षेत्रीय स्वायत्त-शासन निस्सन्देह आवश्यक है क्योंकि उसकी रचना और उसकी सामाजिक परिस्थितियाँ विशेष ढंग की हैं। रूसी सामाजिक-जनवादी पार्टी ने भी इस बात को स्वीकार किया था, जब उसने अपनी दूसरी कांग्रेस में यह घोषणा की थी कि "जिन इलाक़ों की सामाजिक परिस्थितियाँ और आबादी की रचना ख़ास रूस से भिन्न है, उनको क्षेत्रीय स्वराज्य मिलना चाहिए।"

जब दूसरी कांग्रेस में मार्तोव ने यह बात पेश की थी तो उसने इसके पक्ष में यह तर्क दिया था कि "रूस के बड़े भारी रक़बे को देखते हुए, और केन्द्रीय शासन के अनुभव को ध्यान में रखते हुए, फ़िनलैण्ड, पोलैण्ड, लिथुआनिया और काकेशस जैसी बड़ी इकाइयों को क्षेत्रीय स्वराज्य का अधिकार देना आवश्यक और उपयोगी प्रतीत होता है।"

पर, इससे यह परिणाम निकलता है कि क्षेत्रीय *स्वराज्य* को क्षेत्रीय *स्वायत्त-शासन* समझना चाहिये।

किन्तु, एन० इसके आगे जाता है। उसकी राय में काकेशस के लिये क्षेत्रीय स्वायत्त-शासन का प्रस्ताव "सवाल के केवल एक पहलू" को लेता है।

१. देखिए जार्जियन पत्र "हमारा जीवन" का वर्ष १९१२ का बारहवाँ अंक।

"अभी तक हमने केवल स्थानीय जीवन के भौतिक विकास की चर्चा की है। परन्तु, किसी क्षेत्र के आर्थिक विकास के लिए केवल आर्थिक कार्रवाही ही नहीं, मानसिक, सांस्कृतिक कार्रवाही भी आवश्यक है।"...."सांस्कृतिक दृष्टि से बलवान जाति आर्थिक क्षेत्र में भी बलवान होती है।"...."किन्तु जातियों का सांस्कृतिक विकास केवल जातीय भाषाओं के द्वारा ही सम्भव है।"...."इसीलिये, मातृभाषाओं से सम्बन्धित सभी प्रश्न जातीय संस्कृति के प्रश्न हैं। शिक्षा, न्याय-व्यवस्था, धर्म-व्यवस्था, साहित्य, कला, विज्ञान, नाट्यशालाएँ आदि, सब ऐसे ही प्रश्न हैं। यदि किसी क्षेत्र का भौतिक विकास जातियों को एकताबद्ध करता है तो जातीय संस्कृति उन्हें एक-दूसरे से अलग करती है और हरेक को एक विशेष स्थान में रख देती है। पहले प्रकार की कार्यवाहियाँ एक विशेष क्षेत्र से सम्बन्धित होती हैं।"...."पर, जातीय संस्कृति के मामलों पर यह बात लागू नहीं होती। ये मामले एक विशेष क्षेत्र से नहीं, बल्कि एक विशेष जाति के अस्तित्व से सम्बन्धित होते हैं। जार्जियन भाषा के भविष्य में प्रत्येक जार्जियन को, चाहे वह कहीं भी रहता हो, दिलचस्पी रहेगी। यह कहना बड़ी नासमझी ज़ाहिर करेगा कि जार्जियन संस्कृति में केवल उन्हीं जार्जियनों को दिलचस्पी है जो जार्जिया में रहते हैं। उदाहरण के लिये, आर्मीनिया के गिरजा को लीजिये। विभिन्न स्थानों और राज्यों में रहने वाले आर्मीनियन उसके प्रबन्ध में भाग लेते हैं। क्षेत्रीय सिद्धान्त का यहाँ कोई स्थान नहीं है। या, एक और मिसाल के रूप में मान लीजिये कि एक जार्जियन अजायबघर बनाना है। इस काम में न सिर्फ़ तिफ़लिस के, बल्कि बाकू, कुताइस, सेण्ट पीटर्सबुर्ग आदि के जार्जियनों को भी दिलचस्पी होगी। अतः, जातीय संस्कृति के सभी मामलों की देख-रेख और प्रबन्ध का काम सम्बन्धित जाति के ही हाथों में रहना चाहिये। और इसलिये, हम काकेशस की जातियों को जातीय-संस्कृतिक स्वायत्त-शासन देने के पक्ष में हैं।"[1]

संक्षेप में, मतलब यह है कि संस्कृति चूंकि क्षेत्र नहीं है और क्षेत्र संस्कृति नहीं है, इसलिये जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन की आवश्यकता है। एन० अपने मत के समर्थन में इससे अधिक कुछ नहीं कह पाता।

हम अब फिर जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन पर आम तौर से विचार करने के लिये नहीं रुकेंगे। हम ऊपर उसके आपत्तिजनक स्वरूप को स्पष्ट कर चुके हैं। यहाँ पर हम सिर्फ़ इतना कहना चाहेंगे कि आम तौर

---

१. उपर्युक्त।

पर आपत्तिजनक होने के अलावा जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन काकेशस की परिस्थिति में खास तौर से एक निरर्थक और मूर्खतापूर्ण बात है।

इसका कारण हम नीचे बताते हैं।

जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन का विचार कमोबेश उन्नत जातियों को मान कर चलता है; उसके लिये ऐसी जातियाँ होनी चाहिये जिनके पास एक उन्नत संस्कृति और साहित्य हो। और, इनके न होने पर स्वायत्त-शासन बिलकुल बेमतलब हो जाता है और हास्यास्पद बन जाता है। परन्तु, काकेशस में ऐसी अनेक क़ौमें हैं जिनमें से प्रत्येक के पास एक आदिम संस्कृति और एक अलग भाषा तो है, पर अलग साहित्य नहीं है। साथ ही, ये क़ौमें परिवर्तन की अवस्था से गुज़र रही हैं, यानी कुछ हद तक वे दूसरी क़ौमों में मिल गई हैं और कुछ हद तक विकास भी कर रही हैं। ऐसी जातियों पर जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन का सिद्धान्त किस प्रकार लागू किया जायगा? इन क़ौमों का क्या होगा? जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन के सिद्धान्त को यदि मानना है तो इन क़ौमों को अलग-अलग जातीय-सांस्कृतिक यूनियनों में कैसे "संगठित" किया जायगा?

इन मिंगरेलियनों, अबखासियनों, अद्जारियनों, स्वानेतियनों, लेसागियनों आदि का क्या होगा जो अलग-अलग भाषाएँ तो बोलती हैं पर जिनका अपना कोई साहित्य नहीं है? इन लोगों को किन जातियों के साथ जोड़ा जायगा? क्या इनकी भी जातीय "यूनियनें" बनाई जायेंगी? और यदि हाँ, तो किन "सांस्कृतिक मामलों" को लेकर उनका "संगठन" किया जायगा?

उन ओसीशियनों का क्या होगा जिनका एक भाग—ट्रांसकाकेशिया के ओसीशियन—जार्जियनों में घुलता-मिलता जा रहा है (लेकिन अभी पूरी तरह नहीं घुला-मिला है), और दूसरा भाग—काकेशिया के ओसीशियन—कुछ हद तक रूसियों में मिलता जा रहा है और कुछ हद तक विकास कर रहा है तथा स्वयं अपना साहित्य पैदा कर रहा है? इन लोगों को एक ही जातीय यूनियन में कैसे "संगठित" किया जायगा?

और, अद्जारियनों को किस जातीय यूनियन में शामिल किया जायगा—वे जार्जियन भाषा बोलते हैं, परन्तु उनकी संस्कृति तुर्की है और धर्म इस्लाम है ? क्या *धार्मिक मामलों के लिये* उनका जार्जियनों से अलग और दूसरे *सांस्कृतिक मामलों के लिये* जार्जियनों के साथ "संगठन" किया जायगा ? और कोबुलेती, इंगुश, इंघीलोई लोगों का क्या होगा ?

यह कैसा स्वायत्त-शासन है जिसकी सूची में इतनी सारी क़ौमों को स्थान नहीं मिलेगा ?

नहीं, यह जातियों की समस्या का हल नहीं है; यह तो केवल कल्पना की उड़ानें भरना है।

लेकिन, थोड़ी देर के लिये असम्भव बात को भी सम्भव मान लीजिये और कल्पना कीजिये कि एन० साहब के जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन पर अमल होने लगा। वह हमें किस दिशा में ले जायगा ? उसके परिणाम क्या होंगे ? उदाहरण के लिये, ट्रांसकाकेशिया के तातारों को लीजिये, जिनमें साक्षरों की संख्या बहुत ही कम है, जिनके स्कूलों पर सर्वशक्तिमान मुल्लाओं का अधिकार है, जिनकी संस्कृति में धार्मिक भावना कूट-कूटकर भरी है……। यह समझना कठिन नहीं होना चाहिये कि इन लोगों को एक जातीय-सांस्कृतिक यूनियन में "संगठित" करने का मतलब यह होगा कि उन्हें मुल्लाओं के हाथों में सौंप दिया जाय, उन्हें प्रतिक्रियावादी मुल्लाओं की दया के सहारे छोड़ दिया जाय और तातार जनता को उनके सबसे खतरनाक दुश्मनों की मानसिक गुलामी की नई जंजीरों में जकड़ दिया जाय।

परन्तु, प्रतिक्रियावादियों के हाथ मजबूत करना कब से सामाजिक-जनवादियों ने सीखा है ?

क्या काकेशस के विसर्जनवादियों को इससे अच्छी और कोई योजना नहीं मिली कि ट्रांसकाकेशिया के तातारों को एक ऐसी जातीय-सांस्कृतिक यूनियन में बाँध दिया जाय जो जनता को घोर प्रतिक्रियावादियों की दासता में जकड़ देगी ?

नहीं, यह जातियों की समस्या का हल नहीं है।

काकेशस में जातियों की समस्या को हल करने का एक यही तरीक़ा है कि *पिछड़ी हुई जातियों और क़ौमों को एक उन्नत संस्कृति की समान धारा में खींच लिया जाय।* इस समस्या का यही एक हल है और यही ऐसा हल है जो सामाजिक-जनवाद को स्वीकार होना चाहिये। काकेशस में क्षेत्रीय स्वायत्त-शासन इसीलिए उचित है कि उससे पिछड़ी हुई जातियाँ समान सांस्कृतिक विकास में खिंच आयेंगी। उससे उन्हें छोटी जातियों की कूप-मण्डूक जैसी अलगाव की भावना से मुक्त होने में मदद मिलेगी। उससे उन्हें आगे बढ़ने में सहायता मिलेगी और वे उन्नत संस्कृति से लाभान्वित हो सकेंगे। परन्तु जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन का बिलकुल उल्टा असर होता है, क्योंकि वह जातियों को उनके सँकरे खोलों में बन्द कर देता है, सांस्कृतिक विकास के नीचे के स्तरों से बाँधे रखता है और संस्कृति के ऊँचे स्तरों तक उठने से रोकता है।

इस तरह, जातीय स्वायत्त-शासन क्षेत्रीय स्वायत्त-शासन के लाभदायक पहलुओं को ख़तम कर देता है।

इसीलिये, मिश्रित ढंग का स्वायत्त-शासन भी, जिसका सुझाव एन० ने दिया है और जिसमें जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन तथा क्षेत्रीय स्वायत्त-शासन की खिचड़ी होगी, उपयुक्त नहीं है। इस अस्वाभाविक सम्मिश्रण से परिस्थिति में सुधार नहीं होगा, बल्कि वह और बिगड़ जायगी; क्योंकि पिछड़ी हुई जातियों का विकास रोकने के अलावा, वह क्षेत्रीय स्वायत्त-शासन को जातीय यूनियनों में संगठित जातियों के झगड़ों का अखाड़ा बना देगा।

अतएव, जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन आम तौर पर तो अनुपयुक्त है ही, काकेशस में वह परले सिरे का मूर्खतापूर्ण और प्रतिक्रियावादी क़दम सिद्ध होगा।

काकेशस में एन० और उसके सहयोगियों द्वारा प्रस्तावित जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन के सम्बन्ध में इतना कहना काफ़ी होगा।

काकेशस के विर्सजनवादी "एक क़दम और आगे बढ़ कर" संगठन के मामले में भी बुन्द के क़दमों पर चलेंगे या नहीं, यह भविष्य ही बतायेगा। अभी तक, सामाजिक-जनवाद के इतिहास में, पहले संगठन के क्षेत्र में संघवाद आया है और फिर कार्यक्रम में जातीय स्वायत्त-शासन ने उसका अनुकरण किया है। आस्ट्रिया के सामाजिक-जनवादियों ने १८९७ में संगठनात्मक संघवाद जारी किया था, और उसके केवल दो साल बाद (१८९९ में) उन्होंने जातीय स्वायत्त-शासन भी स्वीकार कर लिया। बुन्द वालों ने संगत रूप से जातीय स्वायत्त-शासन की चर्चा पहले-पहल १९०१ में शुरू की। पर, संगठनात्मक संघवाद पर वे १८९७ से अमल करते आ रहे थे।

मगर काकेशस के विसर्जनवादियों ने अन्त से श्रीगणेश किया है; उन्होंने जातीय स्वायत्त-शासन मानकर ही शुरूआत की है। यदि उन्होंने बुन्द का अनुकरण करना जारी रखा तो उन्हें पहले अपना वर्तमान संगठनात्मक ढाँचा नष्ट करना पड़ेगा, जो उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशक में अन्तर-जातीयता के आधार पर खड़ा किया गया था।

परन्तु जातीय स्वायत्त-शासन को, जिसे मजदूर अभी नहीं समझते, जारी करना भले ही आसान हो, पर एक ऐसे ढाँचे को नष्ट करना बहुत कठिन होगा जिसे खड़ा करने में बरसों लगे हैं और जिसे काकेशस में रहने वाली सभी जातियों के मजदूरों ने बड़े प्रेम और परिश्रम से बनाया है। इस भीमकार्य में हाथ लगाते ही मजदूरों की आँखें खुल जायेंगी और वे जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन की जातीयतावादी असलियत पहचानने लगेंगे।

● ● ●

काकेशिया वाले जब कि जातियों के प्रश्न को प्रचलित ढंग से, यानी लिखित और जबानी बहस करके, हल करने में लगे हैं, तब विसर्जनवादियों के अखिल रूसी सम्मेलन ने एक असाधारण तरीक़ा खोज निकाला है। तरीक़ा बहुत सीधा और आसान है। सुनिये:

"काकेशस के प्रतिनिधि-मण्डल का यह सुझाव सुनने के बाद कि······जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन की मांग करना आवश्यक है, यह सम्मेलन, इस मांग के औचित्य-अनौचित्य पर कोई राय न प्रकट करते हुए, यह घोषणा करता है कि कार्यक्रम की प्रत्येक जाति का आत्म-निर्णय का अधिकार स्वीकार करने वाली धारा का यदि यह मतलब लगाया जाय तो वह उसके सही अर्थ के खिलाफ़ नहीं होगा।"

इस प्रकार, पहले वे प्रश्न के "औचित्य-अनौचित्य पर कोई राय नहीं प्रकट करते," और फिर "घोषणा" भी कर डालते हैं। अनोखा तरीक़ा है!···

और, यह अनोखा सम्मेलन "घोषणा" क्या करता है?

यह कि जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन की "मांग" जातियों के आत्म-निर्णय के अधिकार को स्वीकार करने वाले कार्यक्रम के "सही अर्थ के खिलाफ़ नहीं जाती है।"

इस स्थापना पर थोड़ा विचार कर लिया जाय।

आत्म-निर्णय वाली धारा का सम्बन्ध जातियों के अधिकारों से है। इस धारा के अनुसार, जातियों को न केवल स्वायत्त-शासन का, बल्कि अलग हो जाने का भी अधिकार रहेगा। यहाँ सवाल *राजनीतिक* आत्म-निर्णय का है। राजनीतिक आत्म-निर्णय के जिस सिद्धान्त को सारे अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक-जनवाद ने बरसों से स्वीकार कर रखा है, उसे इस तरह तोड़-मरोड़कर विसर्जनवादी किसको बेवकूफ़ बनाना चाहते थे?

या शायद, विसर्जनवादी बाल की खाल खींचकर अपनी जान बचाने की कोशिश करेंगे और कहेंगे कि जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन जातियों के अधिकारों के "खिलाफ़ नहीं जाता।" मतलब यह कि यदि एक राज्य में रहने वाली सभी जातियाँ जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन के आधार पर अपने मामलों का प्रबन्ध करने का निश्चय करें, तो इन सभी जातियों को ऐसा करने का पूरा अधिकार है, और कोई भी उन पर अन्य प्रकार का राजनीतिक जीवन *ज़बरदस्ती नहीं लाद सकता*। बात नई और विलक्षण है। इसमें क्या इतना और नहीं जोड़ देना चाहिये कि आम तौर पर

प्रत्येक जाति को अपना विधान भंग कर देने, उसकी जगह निरंकुश सत्ता स्थापित कर देने और पुरानी व्यवस्था को फिर से जारी कर देने का भी हक़ है, क्योंकि प्रत्येक जाति ही अपने भाग्य का निर्णय कर सकती है ? हम दुहरा दें : इस दृष्टि से, न तो जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन और न जातीयतावादी प्रतिक्रियावाद का कोई और रूप ही *जातियों के अधिकारों* के ख़िलाफ़ जाता है।

यह विलक्षण सम्मेलन क्या यही बात कहना चाहता था ?

नहीं, यह नहीं। वह साफ़ तौर पर कहता है कि जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन जातियों के अधिकारों के ख़िलाफ़ नहीं, बल्कि *कार्यक्रम के "सही अर्थ" के ख़िलाफ़* "नहीं जाता"। यहाँ सवाल जातियों के अधिकारों का नहीं, कार्यक्रम का है। और, बात समझ में भी आती है। यदि कोई जाति विसर्जनवादियों के सम्मेलन से बात करती तो सम्मेलन शायद सीधे-सीधे यह ऐलान कर देता कि जाति को जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन का अधिकार है। परन्तु, सम्मेलन के सामने कोई जाति नहीं, बल्कि काकेशिया के सामाजिक-जनवादियों का एक "प्रतिनिधि-मण्डल" था। वे बुरे सामाजिक-जनवादी थे, इसमें शक नहीं, पर फिर भी थे तो सामाजिक-जनवादी। और उन्होंने जातियों के अधिकारों के बारे में नहीं पूछा था, बल्कि जानना चाहा था कि जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन का विचार *सामाजिक-जनवाद के सिद्धान्तों* के ख़िलाफ़ जाता है या नहीं। वे मालूम करना चाहते थे कि यह विचार कहीं *सामाजिक-जनवादी पार्टी के कार्यक्रम के "सही अर्थ"* के "ख़िलाफ़" तो नहीं जाता।

इस प्रकार, *जातियों के अधिकार और सामाजिक-जनवादी पार्टी के कार्यक्रम का "सही अर्थ"* एक ही चीज नहीं हैं।

जाहिर है, ऐसी भी मांगें हो सकती हैं जो जातियों के अधिकारों के ख़िलाफ़ तो न जाती हों, पर कार्यक्रम के "सही अर्थ" की बिलकुल उल्टी पड़ती हों।

मिसाल के लिये, सामाजिक-जनवादियों के कार्यक्रम में एक धारा

धार्मिक स्वतन्त्रता के विषय में है। इस धारा के अनुसार, व्यक्तियों का किसी भी समूह को कोई भी धर्म मानने का *अधिकार* है। कैथोलिक धर्म, यूनानी ईसाई (ऑर्थोडौक्स) धर्म, आदि, वह जिसे चाहे माने, उसे पूरा अधिकार है। सामाजिक-जनवादी हर तरह के धार्मिक अत्याचार का मुक़ाबिला करेंगे, चाहे यूनानी ईसाई धर्म के मानने वाले सताये जाते हों, चाहे कैथोलिक और चाहे प्रोटेस्टेण्ट। पर, क्या इसका यह मतलब है कि कैथोलिक धर्म, प्रोटेस्टेण्ट धर्म, आदि, पार्टी के कार्यक्रम के "सही अर्थ के खिलाफ़ नहीं जाते?" नहीं, इसका यह मतलब नहीं है। कैथोलिक धर्म या प्रोटेस्टेण्ट धर्म पर अत्याचार होगा तो सामाजिक-जनवादी सदा उसका विरोध करेंगे। वे हमेशा जातियों के इस अधिकार की रक्षा करेंगे कि उन्हें जिस धर्म को वे चाहें मानने का हक़ है। परन्तु, इसके साथ-साथ, मजदूर वर्ग के हितों की सही समझ के आधार पर, सामाजिक-जनवादी कैथोलिक धर्म, प्रोटेस्टेण्ट धर्म और यूनानी ईसाई धर्म के खिलाफ़ भी प्रचार जारी रखेंगे, ताकि समाजवादी विश्व-दृष्टिकोण की विजय हो।

और, वे यह काम ठीक इसीलिये जारी रखेंगे कि इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं है कि प्रोटेस्टेण्ट धर्म, कैथोलिक धर्म, यूनानी ईसाई धर्म, आदि, कार्यक्रम के "सही अर्थ के खिलाफ़ जाते हैं", यानी, मजदूर वर्ग के सच्चे हितों के खिलाफ़ जाते हैं।

आत्म-निर्णय के बारे में भी यही बात सत्य है। जातियों को अपनी इच्छानुसार अपने मामलों का प्रबन्ध करने का अधिकार है। उन्हें अधिकार है कि अपनी जातीय संस्थाओं में से—वे बुरी हों या भली—जिसकी चाहें रक्षा करें। कोई किसी जाति के जीवन में *ज़बर्दस्ती* हस्तक्षेप नहीं कर सकता (किसी को ऐसा करने का अधिकार नहीं है!)। परन्तु, इसका यह मतलब नहीं कि सामाजिक-जनवादी पार्टी जातियों की बुरी और खतरनाक संस्थाओं और असमय मांगों के खिलाफ़ प्रचार नहीं करेगी या उनका मुक़ाबिला नहीं करेगी। इसके विपरीत, सामाजिक-जनवादी पार्टी का कर्त्तव्य है कि ऐसा प्रचार करे और जातियों की इच्छा को इस प्रकार प्रभा-

वित करे कि जातियाँ मजदूर वर्ग के सर्वोत्तम हितों के अनुसार अपने मामलों का प्रबन्ध करें। इस कारण, सामाजिक-जनवादी पार्टी जातियों के आत्म-निर्णय के अधिकार के समर्थन में प्रचार करने के साथ-साथ, मिसाल के लिये तातारों के अलग होने के खिलाफ़ प्रचार करेगी और काकेशस की जातियों को जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन देने का विरोध करेगी, क्योंकि ये दोनों बातें इन जातियों के *अधिकारों* के खिलाफ़ न जाते हुए भी, कार्यक्रम के *"सही अर्थ"* के अर्थात्, काकेशस के मजदूर वर्ग के हितों के, खिलाफ़ जाती हैं।

अतः स्पष्ट है कि "जातियों के अधिकार" और कार्यक्रम का "सही अर्थ" दो बिलकुल भिन्न क्षेत्रों की बातें हैं। कार्यक्रम का "सही अर्थ" मजदूर वर्ग के हितों को प्रकट करता है, जो कि मजदूर वर्ग के कार्यक्रम में वैज्ञानिक रूप से पेश कर दिया गया है। परन्तु जातियों के अधिकार पूँजीपति वर्ग, अभिजात वर्ग, पादरी वर्ग, आदि, किसी भी वर्ग के हितों को प्रकट कर सकते हैं। यह केवल इस बात पर निर्भर करता है कि किस समय किस वर्ग की शक्ति और प्रभाव अधिक है। पहली बात मार्क्सवादियों के *कर्त्तव्यों* को बताती है; दूसरी जातियों के *अधिकारों* की व्याख्या करती है। जातियों में अनेक वर्ग होते हैं। जातियों के अधिकार और सामाजिक-जनवाद के सिद्धान्त एक-दूसरे के "खिलाफ़" भी जा सकते हैं, नहीं भी जा सकते हैं; वैसे ही, जैसे मिश्र के पिरामिड विसर्जनवादियों के प्रसिद्ध सम्मेलन के खिलाफ़ भी जा सकते हैं, नहीं भी जा सकते हैं! सीधी बात तो यह है कि दोनों में कोई समानता नहीं है।

पर, इससे यह परिणाम निकलता है कि इस विलक्षण सम्मेलन ने बड़े अक्षम्य ढंग से दो बिलकुल भिन्न वस्तुओं को उलझा दिया है। इससे जो नतीजा निकला उससे जातियों की समस्या का कोई हल नहीं मिला, बल्कि एक बेहूदी स्थापना तैयार हो गई जिसके अनुसार जातियों के अधिकार और सामाजिक-जनवाद के सिद्धान्त एक-दूसरे के "खिलाफ़ नहीं जाते" और इसीलिये प्रत्येक जाति की प्रत्येक मांग को मजदूर वर्ग के हितों के

अनुरूप सिद्ध किया जा सकता है। और इसलिये, आत्म-निर्णय के लिए संघर्ष करने वाली प्रत्येक जाति की कोई मांग ऐसी नहीं हो सकती जो कार्य-क्रम के "सही अर्थ के खिलाफ़ जाती हो !"

तर्क की टांग तोड़ दी गई है...

इसी बेहूदगी से विसर्जनवादियों के सम्मेलन का वह प्रसिद्ध प्रस्ताव उत्पन्न हुआ था जिसमें ऐलान किया गया है कि जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन की मांग कार्यक्रम के "सही अर्थ के खिलाफ़ नहीं जाती।"

परन्तु, विसर्जनवादियों के सम्मेलन ने केवल तर्क-शास्त्र के नियमों को ही भंग नहीं किया है।

जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन स्वीकार करके, उसने रूसी सामाजिक-जनवादी आन्दोलन के प्रति अपने कर्तव्य की अवहेलना की है। निश्चय ही, उसने कार्यक्रम के "सही अर्थ" की अवहेलना की है, क्योंकि सभी जानते हैं कि दूसरी कांग्रेस ने, जिसमें कार्यक्रम स्वीकार किया गया था, जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन को *ज़ोरदार तरीके से अस्वीकार किया था*। इस सम्बन्ध में, उस कांग्रेस में ये शब्द कहे गये थे :

"**गोल्डब्लाट्ट** (बुन्दवादी):...मैं यह आवश्यक समझता हूँ कि जातियों की सांस्कृतिक विकास की स्वतंत्रता को रक्षा करने के लिये विशेष संस्थाएँ क़ायम की जायें, और इसलिये, मैं प्रस्ताव करता हूँ कि आठवें पैराग्राफ़ में ये शब्द जोड़ दिये जायें : **और ऐसी संस्थाओं को जन्म देना जो उन्हें सांस्कृतिक विकास की पूर्ण स्वतंत्रता की गारण्टी दे सकें।**" (जैसा कि हमें मालूम है, जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन की बुन्द ने इन्हीं शब्दों में व्याख्या की थी—**स्तालिन**)

"**मार्तिनोव** ने कहा कि आम संस्थाएँ ही इस प्रकार की बनाई जायें जिससे विशेष हितों की भी रक्षा हो सके। जातियों के सांस्कृतिक विकास की स्वतंत्रता की गारण्टी करने के लिये एक **विशेष** संस्था बनाना असम्भव है।"

"**येगोरोव** : जातियों के प्रश्न पर हम केवल नकारात्मक प्रस्ताव पास कर सकते हैं, यानी, हम जातियों पर किसी तरह के प्रतिबंध लगाने के विरोधी हैं। परन्तु, सामाजिक-जनवादियों को हैसियत से हमारा इस बात से कोई मतलब नहीं है कि कोई विशेष

जाति, जाति के रूप में विकास करेगी या नहीं। वह तो एक स्वयंस्फूर्त प्रक्रिया है।"

"**कोल्टसोव:** जब कभी बुन्द के प्रतिनिधियों के जातीयतावाद का ज़िक्र किया जाता है तो वे हमेशा बड़े नाराज़ हो जाते हैं। फिर भी कहना पड़ेगा कि बुन्द के प्रतिनिधि ने जो संशोधन पेश किया है, उसका स्वरूप शुद्ध जातीयतावादी है। हमसे कहा जा रहा है कि जो जातियाँ मिटती जा रही हैं उनको भी जीवित रखने के लिये हम निश्चित रूप से आक्रमणात्मक क़दम उठायें।"

अन्त में, "**गोल्डब्लाट्ट के संशोधन को बहुमत ने अस्वीकार कर दिया। उसके पक्ष में केवल तीन वोटें पड़ीं।**"

इस प्रकार, यह बात स्पष्ट है कि विसर्जनवादियों का सम्मेलन निश्चित रूप से कार्यक्रम के "सही अर्थ" के ख़िलाफ़ गया। उसने कार्यक्रम की अवहेलना की।

अब विसर्जनवादी अपने मत के समर्थन में स्टौकहोम कांग्रेस की दुहाई दे रहे हैं। उनका कहना है कि इस कांग्रेस ने जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन स्वीकार कर लिया है। उदाहरण के लिये, वी० कौस्सोव्स्की ने लिखा है:

"जैसा कि हम जानते हैं, स्टौकहोम कांग्रेस द्वारा स्वीकृत समझौते के अनुसार, (जब तक एक आम पार्टी कांग्रेस जातियों के प्रश्न पर फ़ैसला न दे दे, तब तक के लिए) बुन्द को अपना जातीय कार्यक्रम बनाये रखने की इजाज़त दे दी गई थी। इस कांग्रेस ने यह बात मानी थी कि जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन कुछ भी हो पर वह पार्टी के आम कार्यक्रम के ख़िलाफ़ नहीं जाता।" [1]

परन्तु, विसर्जनवादियों की कोशिशें बेकार हैं। स्टौकहोम कांग्रेस ने बुन्द के कार्यक्रम को स्वीकार करने की बात कभी न सोची थी—उसने तो केवल तात्कालिक रूप से प्रश्न को बिना किसी निर्णय के छोड़ दिया था।

हमारे बहादुर कौस्सोव्स्की साहब पूरा सत्य कहने की हिम्मत नहीं बटोर सके, पर सत्य खुद बोलता है। सुनिये:

"गालिन ने एक संशोधन पेश किया: यह कि जातीय कार्यक्रम के प्रश्न को **बिना किसी निर्णय के छोड़ दिया जाय, क्योंकि इस समय कांग्रेस उस**

---

1. **नाशा ज़ारया**, अंक ६-१०, १६१२.

पर विचार नहीं कर रही है।" (पक्ष में : ५० वोट; **विरोध में :** ३२ वोट।)

"**आवाज़**—इसका क्या मतलब है कि बिना किसी निर्णय के छोड़ दिया?"

"**अध्यक्ष**—जब हम यह कहते हैं कि जातियों का प्रश्न बिना किसी निर्णय के छोड़ दिया जाता है तो उसका मतलब यह है कि अगली कांग्रेस तक इस सवाल पर बुन्द अपने फ़ैसले पर क़ायम रह सकती है।" (शब्दों पर जोर मेरा है—**स्तालिन**)

अतः स्पष्ट है कि बुन्द के जातीय कार्यक्रम के प्रश्न पर कांग्रेस ने "विचार तक नहीं किया।" उसने केवल उसे "बिना निर्णय के छोड़ दिया", यानी, अगली कांग्रेस तक अपने कार्यक्रम का भाग्य निर्णय करने की जिम्मेदारी बुन्द पर छोड़ दी। दूसरे शब्दों में, स्टौकहोम कांग्रेस सवाल को टाल गई; जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन के प्रश्न पर उसने माफ़िक या ख़िलाफ़ कोई राय नहीं दी।

परन्तु, विसर्जनवादियों का सम्मेलन प्रश्न पर निश्चित राय देने को तैयार है। उसने जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन का समर्थन किया है और पार्टी-कार्यक्रम के नाम पर उसे स्वीकार कर लिया है।

अन्तर एकदम स्पष्ट है।

इस प्रकार, अपने सारे पैंतरों के बावजूद विसर्जनवादियों का सम्मेलन जातियों के प्रश्न पर एक पग भी आगे नहीं बढ़ सका है।

बुन्द वालों और काकेशस के जातीयतावादी-विसर्जनवादियों के सामने नाक रगड़ने के सिवा यह सम्मेलन और कुछ नहीं कर सका।

७

रूस में जातियों की समस्या

अब हमारे लिये जातियों की समस्या का एक ठोस हल सुझाना ही बाक़ी है।

हम यह मान कर चलते हैं कि रूस की वर्तमान परिस्थिति को ध्यान में रख कर ही इस समस्या को सुलझाया जा सकता है।

रूस इस समय संक्रमण के काल में है जबकि "सामान्य", "वैधानिक" जीवन अभी चालू नहीं हुआ है और राजनीतिक संकट अभी तक हल नहीं हुआ है। आगे तूफ़ानों और "पेचीदगियों" के दिन आने वाले हैं। और, इन सब के कारण वह आन्दोलन उठ रहा है—वर्तमान और भावी आन्दोलन—जिसका उद्देश्य पूर्ण जनतन्त्र स्थापित करना है।

जातियों की समस्या पर हमें इस आन्दोलन को ध्यान में रख कर विचार करना चाहिये।

अतएव, जातियों की समस्या को हल करने का *आधार* और शर्त यह है कि देश का पूर्ण जनवादीकरण हो।

इस समस्या पर विचार करते समय हमें न सिर्फ़ घरेलू परिस्थिति को, बल्कि विदेशों की परिस्थिति को भी ध्यान में रखना चाहिये। रूस, योरप और एशिया के बीच में और आस्ट्रिया और चीन के बीच में स्थित है। एशिया में जनवाद का बढ़ना अवश्यम्भावी है। योरप में साम्राज्यवाद का विकास होना कोई आकस्मिक बात नहीं है। योरप में, पूँजी अपने को बहुत सीमित अनुभव करती है और नये बाज़ारों, सस्ती मजूरी, और

व्यवसाय करने के नये क्षेत्रों की तलाश में वह विदेशों की ओर दौड़ रही है। परन्तु, इससे वैदेशिक पेचीदगियाँ पैदा हो जाती हैं और युद्ध छिड़ जाते हैं। कोई यह कहने की हिम्मत नहीं कर सकता कि बाल्कन युद्ध* के साथ ये पेचीदगियाँ समाप्त हो गई हैं, बल्कि कहना पड़ेगा कि उसके साथ वे शुरू हुई हैं। अतएव, यह पूर्णतया सम्भव है कि अन्दरूनी और बाहरी परिस्थितियाँ मिल कर ऐसा रूप धारण कर लें कि रूस में रहने वाली कोई जाति अपनी स्वतन्त्रता का सवाल उठाना आवश्यक समझे और उसे हल करने की कोशिश करे। और, जाहिर है, ऐसी हालत में मार्क्सवादी उसके रास्ते में बाधा नहीं डालेंगे।

परन्तु, इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि रूसी मार्क्सवादी जातियों के आत्म-निर्णय के अधिकार को माने बिना नहीं रह सकते।

अतएव, जातियों की समस्या का हल निकालने में *आत्म-निर्णय का अधिकार एक अत्यन्त आवश्यक तत्त्व का काम करता है।*

और भी। उन जातियों की ओर हमारा क्या रुख़ होगा जो किसी न किसी कारण से आम ढाँचे के अन्दर ही रहना पसन्द करेंगी?

हम देख चुके हैं कि जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन इसके लिए उपयुक्त नहीं है। पहली बात तो यह कि वह एक बनावटी और अव्यवहारिक तरीक़ा है, क्योंकि उसके द्वारा ऐसे लोगों को जबर्दस्ती एक जाति में खींचने की कोशिश की जाती है जिन्हें स्वयं वास्तव घटना-चक्र एक-दूसरे से अलग करता और देश के कोने-कोने में बिखेरता जा रहा है। दूसरे, उससे जातीयतावाद को प्रोत्साहन मिलता है, क्योंकि वह उस दृष्टिकोण को बल पहुँचाता है जो जातीय भेदों के आधार पर लोगों का "विभाजन करने", जातियों का "संगठन करने" और "जातीय विशेषताओं" को "पालने-पोसने" में विश्वास करता है, जब कि ये सारी बातें सामाजिक-जनवाद के सिद्धान्तों के ख़िलाफ़ हैं। यह आकस्मिक घटना नहीं है कि राइखश्राट में मोरावियन अलगाववादियों ने जर्मन सामाजिक-जनवादी सदस्यों से नाता तोड़ कर, मोरावियन पूँजीपति सदस्यों के साथ सम्बन्ध

जोड़ा और मानों एक मोरावियन दल बना लिया। न यह कोई आकस्मिक घटना है कि बुन्द के अलगाववादियों ने इतवार के पवित्र त्यौहार ("सैब्रेथ") और "यिद्दिश भाषा" का समर्थन करके अपने-आपको जातीयतावाद के दलदल में फँसा लिया है। अभी द्यूमा में बुन्द का कोई प्रतिनिधि नहीं है, परन्तु बुन्द के इलाक़े में एक प्रतिक्रियावादी पुरोहितपन्थी यहूदी समुदाय है जिसकी "नियन्त्रणकारी संस्थाओं" में बुन्द यहूदी मजदूरों और पूंजी-पतियों का एक "स्नेह-सम्मेलन संगठित" कर रही है।[1] जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन लोगों को इतना गिरा देता है!

अतः *जातीय* स्वायत्त-शासन से समस्या हल नहीं होती।

तब रास्ता क्या है?

असली हल केवल *क्षेत्रीय* स्वायत्त-शासन है, जिसके अनुसार पोलैण्ड, लिथुआनिया, युक्राइन, काकेशस आदि ऐसी इकाइयों को स्वायत्त-शासन का अधिकार मिलेगा जो एक निश्चित आकार और रूप प्राप्त कर चुकी हैं।

क्षेत्रीय स्वायत्त-शासन से पहला लाभ यह होता है कि वह एक क्षेत्र-विहीन काल्पनिक वस्तु से न उलझ कर, एक निश्चित क्षेत्र में रहने वाली एक विशिष्ट आबादी से सम्बन्ध रखता है। दूसरे, यह विचार लोगों को जातियों के आधार पर नहीं बाँटता, जातीय भेद-भाव को मजबूत नहीं करता; उल्टे यह इस भेद-भाव को नष्ट करने में मदद करता है और पूरी आबादी को इस प्रकार एकताबद्ध करता है कि एक विशेष ढंग के विभाजन के लिये, यानी वर्ग-आधार पर विभाजन के लिये, द्वार खुल जाता है। अन्तिम बात यह कि क्षेत्रीय स्वायत्त-शासन से सम्बन्धित क्षेत्र की प्राकृतिक सम्पत्ति का सर्वोत्तम उपयोग करने और उसकी उत्पादक शक्तियों का अधिकतम विकास करने का अवसर मिलता है और उसके लिये एक समान केन्द्र के फ़ैसलों का इन्तजार नहीं करना पड़ता और ये सारे काम ऐसे हैं जो जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन के द्वारा कभी नहीं हो सकते।

---

१. "बुन्द के ८वें सम्मेलन की रिपोर्ट।"

अतः जातियों की समस्या का हल निकालने में *क्षेत्रीय स्वायत्त-शासन एक आवश्यक तत्त्व का काम करता है।*

ज़ाहिर है, किसी भी क्षेत्र में केवल एक जाति नहीं रहती। हरेक में अनेक जातीय अल्पसंख्यक बिखरे हुए पाये जाते हैं। पोलैण्ड में यहूदी पाये जाते हैं, लिथुआनिया में लैट, काकेशस में रूसी और युक्राइन में पोल। इसलिये, डर हो सकता है कि बहुसंख्यक जातियाँ अल्पसंख्यकों पर अत्याचार करेंगी। परन्तु, यह डर तभी तक सही है जब तक देश में पुरानी समाज-व्यवस्था क़ायम है। देश में पूर्ण जनतन्त्र स्थापित करो, करते ही इस डर की सारी बुनियाद ख़तम हो जायगी।

कहा जाता है कि बिखरे हुए अल्पसंख्यकों को एक जातीय यूनियन में संगठित कर देना चाहिये। पर, अल्पसंख्यक लोग बनावटी यूनियन नहीं चाहते; वे अपने निवास-स्थानों में वास्तविक अधिकार प्राप्त करना चाहते हैं। पूर्ण जनतन्त्र के *अभाव में* ऐसी यूनियन उन्हें क्या दे सकती है? और जहाँ पूर्ण जनतन्त्र है, वहाँ ऐसी जातीय यूनियन की आवश्यकता क्या है?

जातीय अल्पसंख्यकों को विशेष रूप से किन बातों के कारण असन्तोष रहता है?

अल्पसंख्यकों को असन्तोष रहता है तो इसलिये नहीं कि उनकी कोई जातीय यूनियन नहीं है, बल्कि इसलिये कि उन्हें अपनी मातृभाषा प्रयोग करने का अधिकार नहीं है। उन्हें अपनी मातृभाषा प्रयोग करने का अधिकार दे दीजिये, उनका असन्तोष मिट जायगा।

अल्पसंख्यकों को असन्तोष रहता है तो इसलिए नहीं कि उनकी एक बनावटी यूनियन नहीं है, बल्कि इसलिए कि उनके पास अपने स्कूल नहीं हैं। उन्हें अपने स्कूल खोलने दीजिए, उनका सारा असन्तोष दूर हो जायगा।

अल्पसंख्यकों को असन्तोष रहता है तो इसलिए नहीं कि उनकी कोई जातीय यूनियन नहीं है, बल्कि इसलिये कि उन्हें धार्मिक स्वतन्त्रता, एक

स्थान से दूसरे स्थान जाने आदि की स्वतन्त्रता नहीं है। उन्हें यह स्वतन्त्रता दीजिये, उनका असन्तोष जाता रहेगा।

अतएव, जातियों की समस्या सुलझाने में *हर मामले में (भाषा, स्कूलों आदि के मामलों में) जातीय समानता एक अत्यन्त आवश्यक तत्त्व का काम करती है।* इसलिये, देश में पूर्ण जनतन्त्र के आधार पर एक सरकारी क़ानून बनाने की आवश्यकता है जो बिना किसी अपवाद के, हर प्रकार के जातीय विशेषाधिकारों को खतम कर दे और जातीय अल्पसंख्यकों के अधिकारों पर लगे हुए हर तरह के प्रतिबन्धों को समाप्त कर दे।

अल्पसंख्यकों के अधिकारों की यही, और सिर्फ़ एक यही, गारण्टी है जो कि काग़ज़ी गारण्टी नहीं, सच्ची गारण्टी है।

संगठनात्मक संघवाद और जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन के बीच एक आवश्यक सम्बन्ध है, इस बात को आप स्वीकार करें या न करें, पर यह तो आपको मानना ही पड़ेगा कि जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन से एक ऐसा वातावरण तैयार होता है जिसमें संघवाद बेरोक पनपता है और बढ़ते-बढ़ते एकदम अलग हो जाने का, पूर्ण अलगाव का, रूप धारण कर लेता है। जब आस्ट्रिया में चेक लोग और रूस में बुन्द वाले स्वायत्त-शासन से शुरू करके, संघ पर पहुँचे और अन्त में अलगाववाद के गढ़े में जा गिरे तो यह बात तो निर्विवाद सिद्ध हो गई कि इस पूरी प्रक्रिया में उस वातावरण का महत्त्वपूर्ण भाग रहा है जो जातीय-सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन बड़े स्वाभाविक ढंग से उत्पन्न कर देता है। यह कोई आकस्मिक बात नहीं है कि जातीय स्वायत्त-शासन और संगठनात्मक संघवाद सदा साथ-साथ चलते हैं। यह स्वाभाविक है। दोनों विचार जातियों के आधार पर विभाजन चाहते हैं। दोनों जातियों के आधार पर संगठन चाहते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि दोनों एक ही ढंग के विचार हैं। अन्तर केवल इतना है कि एक के द्वारा आम आबादी को बाँटा जाता है और दूसरे के द्वारा सामाजिक-जनवादी मज़दूरों में फूट डाली जाती है।

हम जानते हैं कि मज़दूरों को जातियों के आधार पर बाँटने का क्या

परिणाम होता है। संयुक्त मजदूर पार्टी छिन्न-भिन्न हो जाती है, मजदूर यूनियनें जातियों के आधार पर बँट जाती हैं, जातीय झगड़े बढ़ जाते हैं, जातियों के आधार पर हड़तालें तोड़ी जाती हैं, सामाजिक-जनवादी कार्यकर्ताओं का मनोबल पूरी तरह नष्ट हो जाता है—संगठन में संघवाद के ये परिणाम होते हैं। आस्ट्रिया में सामाजिक-जनवादी आन्दोलन के इतिहास और रूस में बुन्द की कार्यवाहियों से यह बात पूरी तरह सिद्ध हो जाती है।

इस मर्ज की एक ही दवा है, वह यह कि संगठन अन्तरजातीय आधार पर किया जाय।

हमारा लक्ष्य यह होना चाहिये कि रूस में मजदूरों को ऐसे *संयुक्त* और *अविभाज्य* सामूहिक संगठनों में संगठित किया जाय जो विभिन्न स्थानों में रहने वाली सभी जातियों के मजदूरों को अपने में समेट लें और इन सामूहिक संगठनों को *एक ही* पार्टी में जोड़ दें।

कहने की आवश्यकता नहीं कि संयुक्त, अविभाज्य पार्टी के अन्दर क्षेत्रों को व्यापक स्वायत्त-शासन देना इस प्रकार के पार्टी-ढाँचे के खिलाफ़ नहीं जाता, बल्कि पूरी तरह उसके अनुरूप है।

काकेशस का अनुभव बताता है कि इस ढंग का संगठन कितना उपयोगी और समयानुकूल है। यदि काकेशस वालों ने आर्मीनियन और तातार मजदूरों के जातीय झगड़ों को सफलतापूर्वक समाप्त कर दिया है, यदि उन्होंने अपने यहाँ की आबादी को दंगों, गोलीबारी और हत्याकाण्ड से बचा रखा है, यदि जातियों तथा क़ौमों के उस अजायबघर—बाकू में—अब जातीय झगड़े क़तई नहीं हो पाते और यदि बाकू में मजदूरों को शक्तिशाली आन्दोलन की एक धारा में खींचना सम्भव हो सका है—तो काकेशस की सामाजिक-जनवादी पार्टी के अन्तरजातीय ढाँचे को इसका कुछ कम श्रेय नहीं है।

संगठन कैसा है, इसका केवल व्यावहारिक कार्य पर ही असर नहीं पड़ता। मजदूरों के पूरे मानसिक जीवन पर उसकी छाप पड़ती है। मजदूर का जीवन बहुत कुछ वैसा ही बन जाता है जैसा उसके संगठन का

जीवन होता है। संगठन उसके बौद्धिक विकास में मदद देता है। संगठन उसे शिक्षित करता है। और इस प्रकार, अपने संगठन के अन्दर काम करने के दौरान में जब मजदूर लगातार दूसरी जातियों के साथियों से मिलता है, उनके कन्धे से कन्धा मिलाकर एक समान संघर्ष में भाग लेता है और एक समान सामूहिक संस्था का नेतृत्व मानकर चलता है, तब यह विचार उसके दिमाग़ में बहुत गहरे घर कर लेता है कि मजदूर *बुनियादी तौर पर* एक वर्ग के सदस्य और समाजवाद की एक सेना के सैनिक होते हैं। और इससे, लाजिमी तौर पर, मजदूर वर्ग के बड़े हिस्सों को बहुत शिक्षा मिलती है।

इसलिये, अन्तरजातीय ढंग का संगठन मजदूरों को भ्रातृत्व की भावना सिखाता है और अन्तरजातीयता के जबर्दस्त प्रचारक का काम करता है।

परन्तु, जातीय आधार पर संगठित संगठन हरगिज यह नहीं कर सकता। जब जातीयता के आधार पर मजदूरों का संगठन किया जाता है तो वे अपने-अपने जातीय खोलों में बन्द हो जाते हैं और संगठन की दीवारें उन्हें एक-दूसरे से अलग कर देती हैं। तब जोर उन चीजों पर नहीं दिया जाता जो सब मजदूरों के लिये *समान* हैं, बल्कि उन चीजों पर दिया जाता है जो मजदूरों को एक-दूसरे से अलग करती हैं। इस ढंग के संगठन में मजदूर *बुनियादी तौर पर* अपनी जाति का ही सदस्य रहता है; फिर चाहे वह यहूदी हो, या पोल, या और कोई। कोई आश्चर्य नहीं यदि संगठन में *जातीय* संघवाद मजदूरों में जातीय संकीर्णता की भावना पैदा करता है।

इसलिये, जातीय ढंग का संगठन मजदूरों को संकुचित जातीय मनोवृत्ति और जातीय द्वेष का पाठ पढ़ाता है।

इस प्रकार, *बुनियादी तौर पर* बिलकुल भिन्न ढंग के दो संगठन हमारे सामने आते हैं: एक ढंग मजदूरों की अन्तरजातीय एकता पर आधारित है, दूसरा मजदूरों के जातियों के आधार पर संगठनात्मक "विभाजन" पर आधारित है।

इन दो तरह के संगठनों को मिलाने की कोशिशें अभी तक व्यर्थ सिद्ध हुई हैं। १८६७ में, बिम्बर्ग में समझौते के रूप में, आस्ट्रिया की सामाजिक-

जनवादी पार्टी के जो नियम तैयार किये गये थे, उन पर अमल नहीं हो सका। आस्ट्रिया की पार्टी टुकड़े-टुकड़े हो गई और साथ में मजदूर-यूनियनों को भी तबाह करती गई। "समझौता" न केवल अव्यावहारिक, बल्कि हानिकारक भी सिद्ध हुआ। स्ट्रास्सेर ने सही कहा था कि "अलगाववाद की पहली विजय विम्बर्ग पार्टी कांग्रेस में हुई थी।" रूस में भी यही हुआ है। स्टौकहोम कांग्रेस में बुन्द के संघवाद के साथ जो "समझौता" हुआ था, वह एकदम ठप हो गया। बुन्द ने स्टौकहोम समझौते को भंग कर दिया और स्टौकहोम कांग्रेस के समय से ही, बुन्द विभिन्न स्थानों के मजदूरों को एक ऐसे संयुक्त संगठन में शामिल करने के रास्ते में रुकावट बनी हुई है जिसमें सभी जातियों के मजदूर शरीक हों। १९०७ में और १९०८ में, रूसी सामाजिक-जनवादी पार्टी ने बार-बार मांग की कि सभी जातियों के मजदूरों को नीचे से एक करना चाहिये, पर बुन्द बराबर अपनी अलगाववादी नीति पर जमी रही। बुन्द ने शुरू किया संगठनात्मक जातीय स्वायत्त-शासन से, फिर संघवाद का पल्ला पकड़ा, और अन्त में वह एकदम अलग हो जाने और पूर्ण अलगाव तक पहुँच गई। और रूसी सामाजिक-जनवादी पार्टी से नाता तोड़कर, बुन्द ने पार्टी की क़तारों में अव्यवस्था और फूट फैलाई। इस सिलसिले में, जगियेलो वाले मामले* की याद दिलाना काफ़ी होगा।

इसलिये, समझौते के रास्ते को अव्यावहारिक और हानिकारक समझ कर छोड़ना पड़ेगा।

दो बातों में से एक ही बात हो सकती है: *या* तो बुन्द का संघवाद रहेगा, और उस हालत में रूसी सामाजिक-जनवादी पार्टी को अलग-अलग जातियों के मजदूरों के "विभाजन" के आधार पर फिर से अपना संगठन करना होगा; *या* अन्तरजातीय ढंग का संगठन रहेगा, और उस हालत में बुन्द को काकेशियन, लैट और पोल सामाजिक-जनवादी पार्टियों के ढंग पर, क्षेत्रीय स्वायत्त-शासन के आधार पर फिर से अपना संगठन करना

पड़ेगा, और इस तरह यहूदी मज़दूरों की रूस की दूसरी जातियों के मज़दूरों से सीधे तौर पर एकता क़ायम हो सकेगी।

बीच का कोई रास्ता नहीं है। सिद्धान्तों की विजय होती है; वे "समझौते" नहीं किया करते।

अतएव, जातियों की समस्या को हल करने में *मज़दूरों की अन्तर-जातीय एकता का सिद्धान्त एक अत्यन्त आवश्यक तत्त्व का काम करता है।*

वियेना, जनवरी १६१३।

प्रोस्वेश्चेनिये*, अंक ३-५,

मार्च-मई, १६१३ में प्रकाशित।

लेखक का नाम **के० स्तालिन** दिया हुआ था।

टिप्पणियाँ

टाइटिल पृष्ठ

*__मार्क्सवाद और जातियों का प्रश्न__ की रचना १९१२ के अन्त और १९१३ के आरम्भ में वियेना में हुई थी। सबसे पहले वह **प्रोस्वेश्चेनिये** नामक पत्रिका के १९१३ के ३रे-५ वें अंकों में प्रकाशित हुई थी। इसका शीर्षक था—"जातियों का प्रश्न और सामाजिक-जनवाद", और इस पर हस्ताक्षर थे—के० स्तालिन। १९१४ में, प्रिब्योय प्रकाशन गृह, सेन्ट पीटरबुर्ग ने इसे एक अलग पैम्फलेट की तरह **मार्क्सवाद और जातियों का प्रश्न** के शीर्षक से प्रकाशित किया था। गृह-मन्त्री के आदेश से इसे सभी जन पुस्तकालयों और वाचनालयों से हटा दिया गया था। १९२० में, जातियों की जन कमीसारियत की ओर से यह लेख जातीयता के प्रश्न पर जे० वी० स्तालिन के एक **लेख-संग्रह** के रूप में (राज्य प्रकाशन गृह, तूला से) प्रकाशित किया गया था। १९३४ में, इस लेख को एक ग्रन्थ : जे० स्तालिन, **मार्क्सवाद और जातियों तथा उपनिवेशों का प्रश्न, लेखों तथा भाषणों का संग्रह**— में शामिल किया गया था। लेनिन ने अपने लेख—"रूसी सामाजिक-जनवादियों का राष्ट्रीय कार्यक्रम"—में उस काल में जातीयता की समस्या के महत्वपूर्ण बनते जाने के कारणों का जिक्र करते हुए लिखा था : "अभी हाल में मार्क्सवाद के सैद्धान्तिक साहित्य में आज की इन परिस्थितियों और सामाजिक-जनवादियों के राष्ट्रीय कार्यक्रम के सिद्धान्तों को पेश किया जा चुका है (यहाँ स्तालिन के लेख को सबसे पहला स्थान दिया जाना चाहिये)।" फ़रवरी १९१३ में, लेनिन ने मैक्सिम गोर्की के नाम एक पत्र में इस लेख का जिक्र करते हुए लिखा था : "यहाँ हमारे साथ एक विलक्षण जार्जियन है, जो आस्ट्रिया-वाली और दूसरी **सारी** सामग्री इकट्ठी करके **प्रोस्वेश्चेनिये** के लिये एक लम्बा लेख लिखने बैठ गया है।" जब लेनिन को यह सूचना मिली कि लेख के साथ-साथ सम्पादकों की ओर से यह नोट भी प्रकाशित किया जायगा कि सम्पादक गण को उससे

सहमत होना आवश्यक नहीं है, तो लेनिन ने इस पर सख्त ऐतराज़ किया और लिखा कि "ज़ाहिर है, हम इसके खिलाफ़ हैं। यह एक **बहुत ही अच्छा** लेख है। सवाल बड़ा वास्तविक सवाल है और सिद्धान्त के मामले में हम बुन्दवालों के सामने एक इंच भी नहीं डिगेंगे।" मार्च १९१३ में, स्तालिन की गिरफ़्तारी के बाद, लेनिन ने **सोत्सियाल देमोक्रात** के सम्पादकों को लिखा था : "...हम लोगों में से बहुत से पकड़े जा चुके हैं। कोबा को भी वे लोग ले गये।... (**प्रोस्वेश्चेनिये** के तीन अंकों के लिये) कोबा ने जातियों के प्रश्न पर एक लम्बा लेख लिख डाला था। बहुत बढ़िया! हमें बुन्द और विसर्जनवादी अलगाववादियों तथा अवसरवादियों के खिलाफ़ और सत्य के समर्थन में लड़ना चाहिये।" (मार्क्स-ऐंगिल्स-लेनिन इन्स्टीट्यूट का ग्रन्थ-रक्षा गृह)।

पृष्ठ—२

*__ज़ायनवाद__—एक प्रतिक्रियावादी जातीयतावादी रुझान जिसके समर्थक यहूदी पूँजीपति वर्ग में, यहूदी बुद्धिजीवियों में और यहूदी मजदूरों के अधिक पिछड़े हुए हिस्सों में पाये जाते थे। ज़ायनवादी यहूदी मज़दूरों को मज़दूर वर्ग के आम संघर्ष से अलग रखने की कोशिश करते थे।

पृष्ठ—३

*__बुन्द__—अर्थात् "लिथुआनिया, पोलैंड और रूस की आम यहूदी मज़दूर लीग।" यह एक निम्न पूँजीवादी, अवसरवादी, यहूदी संगठन था जो अक्तूबर १८९७ में विलनो नामक स्थान में एक सम्मेलन में स्थापित किया गया था। आम तौर पर, वह यहूदी कारीगरों के बीच काम करता था। १८९८ में, रूसी सामाजिक-जनवादी पार्टी की पहली काँग्रेस के अवसर पर, बुन्द "स्वायत्त-संगठन के रूप में, जो केवल यहूदी मज़दूरों के विशेष प्रश्नों पर स्वतन्त्र रहेगा", पार्टी में शरीक हो गई। रूसी मज़दूर आन्दोलन में बुन्द ने जातीयतावाद और अलगाववाद के केन्द्र का काम किया। लेनिन के पत्र, **इस्क्रा** ने बुन्द के पूँजीवादी, जातीयतावादी रुख़ की कड़ी आलोचना की थी। काकेशस में **इस्क्रा** के समर्थकों ने, स्तालिन के नेतृत्व में, बुन्द के खिलाफ़ लेनिन का पूरी तरह समर्थन किया।

** बोल्शेविकों के प्राग सम्मेलन के जवाब में **विसर्जनवादियों** ने अगस्त १९१२ में वियेना में सम्मेलन किया था, जो अगस्त सम्मेलन के नाम से भी प्रसिद्ध है।

१९०५--०७ की क्रान्ति की असफलता के बाद, प्रतिक्रिया के वर्षों में, मेनशेविक लोगों को "विसर्जनवादी" कहा जाता था, क्योंकि उन्होंने पार्टी के क्रान्तिकारी नारों को

त्याग दिया था और मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी, गुप्त पार्टी को भंग कर देने की कोशिश कर रहे थे।

पृष्ठ—२६

* आस्ट्रिया की सामाजिक-जनवादी पार्टी की **ब्रून** काँग्रेस २४-२६ सितम्बर १८६६ को हुई थी। जातियों के प्रश्न पर इस काँग्रेस ने जो प्रस्ताव पास किया था, वह स्तालिन ने इस पुस्तिका के अगले अध्याय में दिया है। (देखिए पृष्ठ ३६)।

पृष्ठ—३३

* ये शब्द ज़ारशाह के अर्थ-मंत्री, वो० को० कोव्स्तेव ने, जो कि बाद को प्रधानमंत्री हुआ, २४ अप्रैल, १६०८ को राज्य दूयूमा में कहे थे।

पृष्ठ—४५

*देखिये कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स के **कम्युनिस्ट घोषणापत्र** का दूसरा अध्याय।

पृष्ठ—४६

*आस्ट्रिया की सामाजिक-जनवादी पार्टी की वियेना कांग्रेस, जो कि ६-१२ जून १८६७ को हुई थी, विम्बर्ग कांग्रेस के नाम से भी जानी जाती है। विम्बर्ग उस होटल का नाम था जहाँ कांग्रेस हुई थी।

पृष्ठ—५५

***बुन्द का आठवाँ सम्मेलन** सितम्बर १६१० में ल्वोव में हुआ था।

पृष्ठ—५८

* **ज़ा पार्टियू** नामक पत्र के २ अक्तूबर, १६१२ के अंक में "फूटपरस्तों का एक और सम्मेलन" शीर्षक से प्रकाशित एक लेख में प्लेखानोव ने विसर्जनवादियों के "अगस्त सम्मेलन" की निन्दा की थी और कहा था कि बुन्द वाले तथा काकेशस के सामाजिक-जनवादी समाजवाद को जातीयता के रंग में ढाल रहे हैं। बुन्दवादियों के नेता, कौस्सोव्स्की ने विसर्जनवादियों के पत्र **नाशा ज़ार्या** में एक पत्र लिखकर इसके लिये प्लेखानोव की आलोचना की थी।

पृष्ठ—६०

***इस्क्रा (चिनगारी)** उस पहले अखिल रूसी मार्क्सवादी पत्र का नाम था जिसे लेनिन ने १६०० में क़ायम किया था। क्रान्तिकारी मार्क्सवादियों के इस लड़ाक मुखपत्र की स्थापना का काम "उन कड़ियों और कामों में सबसे मुख्य कड़ी और सबसे मुख्य काम था जो उस समय पार्टी के सामने थे।" (स्तालिन)।

रूस में पुलिस-दमन के कारण क्रान्तिकारी पत्र प्रकाशित करना असम्भव था। इसलिए, साइबेरिया में निर्वासन के समय ही लेनिन ने विदेश जाकर एक पत्र प्रकाशित करने की पूरी योजना बना ली थी। जनवरी १९०० में, निर्वासन से लौटते ही लेनिन ने इस योजना पर अमल करना आरम्भ कर दिया था।

इस्क्रा का पहला अंक ११ दिसम्बर, १९०० को लीपज़िग में प्रकाशित हुआ था। इसके बाद के अंक म्यूनिख, लन्दन और जिनेवा से निकाले गये थे।

इस्क्रा के सम्पादक-मण्डल में थे। वी० आई० लेनिन, जी० वी० प्लेखानोव, वाई० ओ० यार्तोव, पी० बी० एक्सेलरोद, ए० एन० पोत्रेस्सोव और वी० आई० जासूलिच। एन० के० क्रुप्सकाया १९०१ में मण्डल की मन्त्राणी, और लेनिन वस्तुतः प्रधान सम्पादक का काम किया करते थे। **इस्क्रा** में प्रकाशित उनके लेखों में रूस में मज़दूर वर्ग के वर्ग-संघर्ष की तथा पार्टी बनाने के संघर्ष की बुनियादी समस्याओं का विवेचन और मुख्य अन्तरराष्ट्रीय घटनाओं का विश्लेषण होता था।

लेनिन और **इस्क्रा** की नीति का समर्थन करने वाली पार्टी-कमिटियाँ कई शहरों, जिनमें सेंट पीटर्सबुर्ग और मॉस्को भी थे, में संगठित की गई थीं। काकेशस में **इस्क्रा** की नीति का समर्थन जार्जियन भाषा का **बरद्ज़ोला (संघर्ष)** नामक ग़ैरक़ानूनी पत्र कर रहा था, जो कि तिफ़लिस के सामाजिक-जनवादी संगठन का पत्र था। काकेशस में लेनिन और **इस्क्रा** के समर्थन करने वाले संगठनों के नेता स्तालिन थे। उनके सहयोगियों में वी० ज़ेड केत्सखोवेली, ए० जी० त्सुलुकिज़े और वी० के० कुर्नातोव्स्की थे।

इस्क्रा-संगठनों की नींव लेनिन और स्तालिन द्वारा शिक्षित पेशेवर क्रांतिकारियों (एन० इ० बौमन, आई० वी० बाबुश्किन, एस० आई० गुसेव, एम० आई० कालिनिन, और दूसरों) ने डाली थी। इन संगठनों का काम इन्हीं की सीधी निगरानी में होता था।

लेनिन के नेतृत्व में और उनके सक्रिय सहयोग से, **इस्क्रा** के सम्पादक-मण्डल ने पार्टी की दूसरी कांग्रेस बुलायी जो कि जुलाई-अगस्त १९०३ में हुई।

उस समय तक रूस के अधिकतर सामाजिक-जनवादी संगठन **इस्क्रा** के विचारों का समर्थन करने लगे थे, उसकी बनाई हुई कार्यनीति, कार्यक्रम तथा संगठनात्मक योजना को मानते थे और उसे अपने प्रमुख पत्र के रूप में स्वीकार करते थे। दूसरी पार्टी काँग्रेस ने एक विशेष प्रस्ताव पास करके पार्टी बनाने के संघर्ष में **इस्क्रा** की अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार किया था। और उसे पार्टी का केन्द्रीय मुखपत्र

घोषित किया था।

दूसरी कांग्रेस ने **इस्क्रा** का एक नया सम्पादक-मण्डल नियुक्त किया। उसके सदस्य थे : लेनिन, प्लेखानोव और मार्तोव। कांग्रेस के निर्णय को न मानकर मार्तोव ने काम करने से इनकार कर दिया और ४६ वें से लेकर ५१ वें अंक तक **इस्क्रा** का सम्पादन लेनिन और प्लेखानोव ने किया था। बाद में, प्लेखानोव ने मेनशेविकों का रुख अपना लिया और माँग की कि पुराने सभी मेनशेविक सम्पादक, जिन्हें कांग्रेस ने नहीं चुना था, फिर से सम्पादक-मण्डल में ले लिये जायें। इस पर, १ नवम्बर १९०३ को केन्द्रीय कमिटी में अपने पैर जमाने के बाद, मेनशेविक अवसरवादियों पर हमला बोलने के लिए सम्पादक-मण्डल से इस्तीफ़ा दे दिया। ५२ वें अंक का सम्पादन अकेले प्लेखानोव ने किया। २६ नवम्बर, १९०३ को प्लेखानोव ने अपनी मर्ज़ी से और कांग्रेस के फ़ैसले के खिलाफ़ पुराने मेनशेविक सम्पादकों को मण्डल में ले लिया। इस प्रकार, ५२ वें अंक से **इस्क्रा** मेनशेविकों का मुखपत्र बन गया।

"उस समय से पार्टी के अन्दर लेनिन का बोल्शेविक इस्क्रा, **पुराने इस्क्रा** के नाम से और मेनशेविक, अवसरवादी इस्क्रा, **नये इस्क्रा** के नाम से जाने जाते हैं।" **(सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास)।**

पृष्ठ—७९

* यहाँ पहले बाल्कन युद्ध से मतलब है, जो अक्तूबर १९१२ में छिड़ा था और जिसमें एक तरफ़ बल्गेरिया, सर्बिया, यूनान (ग्रीस) तथा मोण्टेनीग्रो थे और दूसरी तरफ़ तुर्की था।

पृष्ठ—८५

***जगियेल्लो** पोलैंड की समाजवादी पार्टी का सदस्य था और वारसा नगर से चौथी दूमा का मेम्बर चुना गया था। इसके चुनाव में बुन्द और समाजवादी पार्टी ने पोलैंड के सामाजिक-जनवादियों के खिलाफ़ पूँजीवादी-राष्ट्रवादियों के साथ संयुक्त मोर्चा बनाया था। इसके बाद भी, दूमा के सामाजिक-जनवादी दल ने बहुमत से उसे अपना सदस्य स्वीकार कर लिया। इस सुझाव के पक्ष में सात मेनशेविक विसर्जनवादियों ने मत दिया और खिलाफ़ छः बोल्शेविकों ने वोट दी।

पृष्ठ—८६

***प्रोस्वेश्चेनिये (उद्बोधन)**—बोल्शेविकों के क़ानूनी मासिक पत्र का नाम था, जो सेण्ट पीटर्सबुर्ग में दिसम्बर १९११ से प्रकाशित हो रहा था। रूस में इसके सम्पादक-मंडल